कलाप

भाग 1

कक्षा 6 के लिए हिंदी की पूरक पाठ्यपुस्तक

संपादक
प्रमोदकुमार दुबे

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
फरवरी 2004 फाल्गुन 1925

PD 150T DRH

ISBN 81-7450-271-8

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस	100, 100 फीट रोड, हास्डकरे	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस	सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लेक्स
श्री अरविंद मार्ग	हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी III इस्टेज	डाकघर नवजीवन	निकट: धनकल बस स्टॉप, पनिहटी	मालीगांव
नई दिल्ली 110 016	बेंगलूर 560 085	अहमदाबाद 380 014	कोलकाता 700 114	गुवाहाटी 781021

प्रकाशन सहयोग

संपादन : दयाराम हरितश
उत्पादन : अरुण चितकारा

चित्र
भूषण शालीग्राम

आवरण
बालकृष्ण

रु. 20.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटर मार्क 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा यंग प्रिंटिंग प्रेस, 2626, गली नं. 7, बिहारी कालोनी, शाहदरा, दिल्ली 110 032 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् राष्ट्र की शैक्षिक आवश्यकताओं के अनुरूप विद्यालयी शिक्षा की पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों का निर्माण करती रही है। इसी क्रम में *सन2000मेंपरिषद्नेविद्यालयीशिक्षाकेलिएराष्ट्रीयपाठ्यचर्या कीरूपरेखा* का निर्माण किया। इसके आधार पर विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रमों में संशोधन एवं परिवर्तन किए गए। नवनिर्मित पाठ्यक्रम के अनुरूप परिषद् ने नई पाठ्यपुस्तकों के प्रणयन का कार्य अपने हाथ में लिया है। तदनुसार कक्षा 6 के लिए हिंदी की यह नई पूरक पाठ्यपुस्तक **कलाप** तैयार की गई है।

प्रस्तुत पुस्तक की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

(क) इस पूरक पाठ्यपुस्तक में कई भारतीय भाषाओं की हिंदी में अनुदित कहानियों को संकलित किया गया है। इससे छात्र हिंदी के अतिरिक्त अपने राष्ट्र की अन्य भाषाओं के साहित्य से भी परिचित हो सकेंगे और राष्ट्र की एकात्मक संवेदनाओं को पहचान सकेंगे।

(ख) स्वपठन के लिए गद्य साहित्य की विधाओं में कहानी सबसे लोकप्रिय एवं रुचिकर विधा है। इससे साहित्य-अध्ययन में छात्रों की रुचि जागृत हो सकेगी। संकलित कहानियों में विषय की विविधता, शैलीगत भिन्नता और अलग-अलग परिवेशों की छटाएँ भी निहित हैं, इनमें स्वस्थ जीवन-मूल्यों के विकास में सहयोगी तत्त्व हैं। इनसे निश्चित ही छात्रों की स्वपठन-रुचि और स्वस्थ अभिवृत्ति का विकास हो सकेगा।

(ग) इन कहानियों का चयन छात्रों की बौद्धिक क्षमता, रुचि तथा उनकी भाषिक दक्षता के विकास को दृष्टि में रखकर किया गया है।

संकलित कहानियों के माध्यम से प्रेषित होने वाले मूल्य परक संदेशों में निम्नलिखित बिंदु प्रधान हैं – आत्मविश्लेषण की प्रवृति, आत्मशक्ति की पहचान, नैतिक एवं सामाजिक कर्तव्यों के प्रति जागरूकता – उठो–जागो! (वेद से); महात्मा गांधी से जुड़े एक क्रांतिकारी के जीवन का प्रेरक प्रसंग – एक फूल (पंजाबी); मानवीय संवेदना और सहयोग की भावना – सहपाठी (बंगला); माँ की ममता और वात्सल्य – माँ (उर्दू); न्याय, दानशीलता, सुशासन– दानी कुमणन (तमिल); अपराध बोध से भावनाओं का उदात्तीकरण – शापमुक्ति (हिंदी); श्रम निष्ठा, निर्लोभ, स्वावलंबन – चार सिक्के (हिंदी); दूसरों को बुरा देखने के बदले स्वयं के सुधार की प्रेरणा – जादुई दर्पण (हिंदी); प्राणी के मूल स्वभाव और उनके साथ समुचित व्यवहार, सच्चे मित्र की पहचान, नीति कुशलता व्यवहार चातुर्य (तीन लोक कथाएँ) इत्यादि।

इन कहानियों से निश्चित ही हिंदी भाषा का वह रूप सामने आएगा जिसमें अखिल भारतीय जीवन की छवि प्रतिभासित होगी।

प्रस्तुत पुस्तक निर्माण में हमें अनेक विद्वानों, लेखकों, शिक्षकों एवं भाषा विदों का सहयोग मिला है। उन्हें मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ। जिन लेखकों और अनुवादकों ने अपनी रचनाएँ इस पुस्तक में सम्मिलित करने की हमें अनुमति दी है, उनके प्रति हम विशेष रूप से आभार व्यक्त करते हैं।

मुझे विश्वास है कि छात्रों के भावात्मक विकास एवं चरित्र निर्माण में यह पुस्तक उपादेय सिद्ध होगी। इसके परिष्कार की दृष्टि से सुधी विद्वानों के सुझावों का हम सदा स्वागत करेंगे।

जगमोहन सिंह राजपूत

निदेशक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली

सितंबर2003

पाठ्यपुस्तक समीक्षा कार्यगोष्ठी के सदस्य

निरंजन कुमार सिंह
रीडर (अवकाशप्राप्त)
सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग
एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

आनंद प्रकाश व्यास
रीडर (अवकाशप्राप्त)
शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

मणिक गोविंद चतुर्वेदी
प्रोफ़ेसर (अवकाशप्राप्त)
केंद्रीय हिंदी संस्थान
श्री अरविंद मार्ग
नई दिल्ली

कृष्ण कुमार गोस्वामी
प्रोफ़ेसर, केंद्रीय हिंदी संस्थान
केलाश कालोनी, नई दिल्ली

अनिरुद्ध राय
प्रोफ़ेसर (अवकाशप्राप्त)
सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग
एन.सी.ई.आर.टी.
नई दिल्ली

मान सिंह
रीडर एवं अध्यक्ष (अवकाशप्राप्त)
हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज
मेरठ, उत्तर प्रदेश

पूरन सहगल
निदेशक, मालव लोकसंस्कृति
अनुष्ठान, मनास
नीमच, मध्य प्रदेश

नीरा नारंग
वरिष्ठप्रवक्ता, शिक्षा विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रमेश तिवारी
प्रवक्ता, कॉलेज ऑफ वोकेशनल स्टडीज़
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

ब्रजेंद्र त्रिपाठी
कार्यक्रम अधिकारी
साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

देवेशंकर 'नवीन'
उपसंपादक
नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली

सत्य नारायण शुक्ल
हिंदी अध्यापक
मध्य विद्यालय तेलारी
रोहतास, बिहार

सविता सिंह
हिंदी अध्यापिका
किडिज कार्नर सीनियर
सेकेंड्री स्कूल, पड़रौना
कुशीनगर, उत्तर प्रदेश

एन.सी.ई.आर.टी. संकाय
सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग

स्नेहलता प्रसाद
रीडर

प्रमोदकुमार दुबे (समन्वयक)
प्रवक्ता

गांधी जी का जंतर

तुम्हें एक जंतर देता हूँ। जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आज़माओ :

जो सबसे गरीब और कमज़ोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुँचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानी क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा, जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

विषय सूची

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51 क

मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे,

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे,

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे,

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों,

(च) हमारी सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे,

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे,

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे,

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे, और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू सके।

1. उठो-जागो!

बहुत प्राचीन काल की बात है जब हमारे देश में गायों को सबसे बड़ी संपत्ति समझा जाता था। जिस व्यक्ति के पास जितनी अधिक गायें होती, वह उतना ही सम्पन्न माना जाता था। त्रित ऋषि को गोधन प्राप्त करने और सम्पन्न होने की तीव्र इच्छा थी। एक दिन उन्हें इंद्र ने उतनी और वैसी गायें दी, जितनी और जैसी गायें वे चाहते थे। एक-से-एक उत्तम गायें पाकर त्रित की खुशी का ठिकाना न रहा। वे उन सुंदर और दुधारू गायों के साथ वनों-उपवनों में विचरण किया करते, उन्हें भाव-भरी आँखों से देख-देख प्रसन्न होते।

त्रित ऋषि को ऐसा लगने लगा कि उन्हें संसार की सारी संपत्ति प्राप्त हो चुकी है। उनसे सुखी और कोई नहीं है। धीरे-धीरे गायों की देखरेख करने और उनके साथ रहने के सुख में वे संसार की बाकी चीजें भूलते चले गए। त्रित ऋषि भूल चुके थे कि इंद्र उन्हें किसलिए इतना मानते थे, मरूत उनके सहयोग के लिए क्यों तैयार रहते थे, सूर्य उन पर क्यों प्रसन्न रहते थे और वरुण से उनकी घनी मित्रता क्यों थी। गायों की शोभा और समृद्धि के आगे त्रित को अपना यज्ञ-याग, तेज-पराक्रम और आश्रम भी भूल चुका था।

यहाँ तक कि उन्हें माँ के लाड़-प्यार और प्रेरणादायी वचन भी भूल गए थे। वे केवल गायों के बीच मगन रहते। वे अपने सारे सामाजिक एवं धार्मिक कर्तव्यों के प्रति उदासीन हो गए। उनके इस व्यवहार से आश्रम की व्यवस्था लड़खड़ा गई। पठन-पाठन आदि दैनिक कार्य ठप्प पड़ गए। अनेक आश्रम वासी छात्र, तपस्वी, आश्रम की देख-भाल करने वाले संरक्षक अन्यत्र चले गए। आश्रम उजाड़-सा हो गया।

आत्मविस्मृति की दशा में पहुँचे हुए त्रित की शक्ति क्षीण हो गई थी। त्रित में देह का बल तो था, पर देह के बल को मन का बल संचालित करता है इसलिए त्रित की देह का बल मन के बल के बिना व्यर्थ हो गया था। त्रित में मन का बल तो था, पर मन के बल को आत्मा का बल संचालित करता है। इसलिए त्रित के मन का बल आत्मा के बल के बिना व्यर्थ हो गया था। आत्म-बल के बिना मनोबल और देह-बल टिक नहीं पाते। इसी आत्म-बल को त्रित ऋषि विस्मृत कर चुके थे।

एक दिन जब सुदूर वन में त्रित अपनी गायों के साथ विचरण कर रहे थे, उन्हें सालावृकि नामक दैत्य के लुटेरे पुत्रों ने घेर लिया और कहा, "ये गायें हमारी हैं। हम इन्हें ले जाएँगे।" इस प्रकार की घटना के लिए त्रित तैयार नहीं थे। उन्होंने विनयपूर्वक कहा, "ऐसा मत कहो। ये गायें मेरी हैं, ये मेरे प्राणों के समान प्रिय हैं। इन्हें मुझसे



दूर मत करो। मेरे प्राण निकल जाएँगे।" उनके मुँह से असहाय के समान निकलती बातों को सुनकर सालावृकी के लुटेरे पुत्र हँस पड़े। उन्हें आशा नहीं थी कि त्रित इस तरह असहाय होकर गिड़गिड़ाने लगेंगे। उनमें विरोध करने की क्षमता नहीं रहेगी। वास्तव में डर तो उन लुटेरों के मन में था कि त्रित के तेज और पराक्रम से उन्हें

लोहा लेना पड़ेगा, लेकिन आसक्ति और मोह के कारण जब त्रित आत्म-बल से रहित और बड़े कमजोर दिखे तो उन्हें और दुखी करने के लिए उनमें से एक ने गायों को निर्दयता से पीटना शुरू किया। गायें रुदन करती हुई भागने लगीं। उन्हें घेर कर रखने के लिए दूसरों ने भी प्रहार किए। त्रित मर्माहत हो उठे। वह दीन-हीन की भांति बार-बार उन लुटेरों के आगे विनय करते रहे और उनकी दशा देखकर लुटेरे और अधिक उत्साहित होते गए। अंत में लुटेरों ने त्रित को भी पकड़ लिया और उन्हें पास के एक कुँए में ढकेल दिया।

त्रित का गोधन छिन चुका था और वे एक ऐसे कुँए में पड़े हुए थे जिसमें पानी नहीं था, उसमें चारों ओर अंधकार छाया हुआ था। उस कुँए की दीवार पर घासें, लताएँ और पौधे उपजे होने के कारण उसमें सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच पाता था। कुँआ बहुत गहरा था। उसमें दुर्गंध भी फैली हुई थी।

उजाले से भरे संसार में रहनेवाले त्रित ऋषि घने अंधकार में डूब गए। धन-समृद्धि की आसक्ति और मोह के अंधकार में तो वे पहले ही डूबे हुए थे। इस अंधकार में ही तो उन्होंने अपने सगे-संबंधियों और मित्रों को – अपने तेज-पराक्रम और आत्म-बल को भुला दिया था। उन्हें लगने लगा, भूख-प्यास और वहाँ की दुर्गंध से उनके प्राण अवश्य निकल जाएँगे। इस दशा में उनके सामने केवल मृत्यु का भय खड़ा हो गया था।

त्रित ने विचार किया, वे इस दशा में कैसे पहुँचे? धन-समृद्धि के मोह के कारण। गोधन उन्हें कैसे प्राप्त हुआ? इंद्र को युद्ध में उनके द्वारा दिए गए सहयोग के कारण। उन्हें इंद्र को सहयोग देने की क्षमता कैसे मिली? मरुत और वरुण की मित्रता के कारण। मरुत और वरुण उनके मित्र कैसे हुए? सूर्य की उपासना करने के कारण। उन्हें सूर्य की उपासना का ज्ञान कैसे मिला? माँ के प्रेरणादायी वचन और मार्गदर्शन के कारण। त्रित को माँ की बहुत याद आने लगी। वे माँ के लिए व्याकुल हो उठे। उनकी आत्म विस्मृति दूर होने लगी। उन्हें याद आया – मैं त्रित हूँ एक मंत्र द्रष्टा ऋषि। मेरी

मेधा से चारों ओर ज्ञान का प्रकाश फैलता था। मेरे यज्ञ और स्तवन से दसों दिशाओं में शांति उत्पन्न होती थी। मेरा आश्रम कितना भरा-पूरा था। कितने वीर मेरे आश्रम की सुरक्षा और व्यवस्था में लगे रहते थे। वह मेरा आत्म-बल, वह मेरा तप-तेज, वह मेरा पौरुष-पराक्रम कहाँ चला गया? हे ईश्वर! मैं किस मोह में पड़ गया और सब कुछ गँवा बैठा। पर, नहीं अब ऐसा नहीं होगा। मैं असहाय नहीं हो सकता। मैं निर्बल नहीं हो सकता। मैं विपन्न नहीं हो सकता। मैं वही अजेय त्रित हूँ जिसने त्रिशिरा को अपने तेज और पराक्रम से मार गिराया था।

त्रित ने देवताओं के गुरु वृहस्पति की स्तुति की। उनका आत्मबल जाग उठा। उन्होंने कुँए की दीवार पर उपजे मजबूत पौधों और लताओं का सहारा लिया। वे धीरे-धीरे प्रयत्नपूर्वक कुँए से बाहर निकल आए।

कुँए से बाहर निकलने के बाद त्रित बिलकुल बदल चुके थे। उनमें कहीं मोह का अंधकार शेष नहीं था। वे अपने भूले हुए सगे-संबंधियों और मित्रों की आवश्यकता पहचान चुके थे। उन्हें अपने भूले हुए तेज और पराक्रम की याद आ चुकी थी। सबसे पहले वे अपनी माँ के पास गए। उन्हें अपनी माँ के लाड़-प्यार में कोई अंतर नहीं दिखा। वे आश्रमवासी स्वजनों से मिले उन्हें आश्रमवासियों के स्नेह में कोई परिवर्तन नहीं दिखा। उन्हें सबके साथ मिलने-जुलने में बहुत अच्छा लग रहा था। उन्होंने आश्रम की व्यवस्था नए सिरे से सुदृढ़ की। जो आश्रमवासी आश्रम छोड़ कर चले गए थे, वे वापस आ गए। आश्रम हरा-भरा, संपन्न दीखने लगा।

कुछ दिनों बाद उन्होंने एक यज्ञ का आयोजन किया। उस यज्ञ में सभी देवगण उपस्थित हुए। उनके प्रिय मित्र मरुत और वरुण तो आए ही इंद्र भी पधारे। उन्होंने सूर्य की पुनः उपासना की। सूर्य भी त्रित से प्रसन्न हुए। त्रित की माँ ने उनके उत्तम यज्ञ को देखा और उन्हें गले से लगा लिया।

त्रित के तेजस्वी स्वरूप को देखकर पुनः आश्रमवासियों में उत्साह और उल्लास छा गया। उनका मस्तक ऊँचा हो चुका था। उनकी छाती चौड़ी हो गई थी, उनकी भुजाएँ



फड़कने लगीं थीं। वे अपने कर्तव्यों के प्रति सचेत रहने लगे। उनकी आत्म विस्मृति दूर हो चुकी थी। वे अपनी खोई हुई संपत्ति पाने के लिए जागरूक हो उठे। उनके प्रयासों की भनक लगते ही सालावृकि के लुटेरे पुत्र भयभीत हो उठे। वे त्रित की गायों को लौटाने आए। उन्होंने त्रित से क्षमा माँगी। त्रित ने उन्हें क्षमा करते हुए कहा, "जब मैं अपने आप को ही खो चुका था – पूरी तरह आत्म विस्मृत हो चुका था तब क्या मेरा कुछ भी मेरे पास रह पाता? अच्छा हुआ कि आप लोगों ने मेरी आत्म विस्मृति को मिटा दिया और मैं अपने आत्म-बल, तेज-पराक्रम और कर्तव्यों को पहचान सका। आत्म विस्मृति खुली आँखों की गहरी नींद है। गहरी नींद में सोए हुए व्यक्ति की संपत्ति लुट जाए तो इसमें आश्चर्य क्या है। सब प्रकार से सम्पन्न और समृद्ध होने के लिए आत्म जागरण बहुत जरूरी है।"

(वेद से)

प्रश्न-अभ्यास

1. इंद्र से गायें प्राप्त हो जाने के पश्चात त्रित ऋषि के व्यवहार में क्या परिवर्तन आया?
2. आत्म विस्मृति हो जाने से त्रित ऋषि को क्या परिणाम भुगतना पड़ा?
3. जब त्रित ऋषि का आत्म-बल जाग उठा तब इसका लुटेरों पर क्या प्रभाव पड़ा?
4. 'आत्म विस्मृति खुली आँखों की गहरी नींद है' इस कथन का आशय स्पष्ट कीजिए।

2. एक फूल

देवकांत को काशी छोड़कर अमृतसर आए कुछ ही अरसा हुआ था। इस बीच उन्होंने शहर का कोना-कोना झाँक लिया।

तब भारत आज़ाद नहीं हुआ था। देवकांत भी अन्य युवकों की तरह आज़ादी की लड़ाई में कूद पड़े थे। वह एक क्रांतिकारी दल में शामिल हो गए। क्रांतिकारियों की धर-पकड़ शुरू हुई तो देवकांत ने वेश बदला। नकली दाढ़ी-मूँछ लगाई। फिर अपनी सात वर्ष की बेटी गौरी का हाथ पकड़कर अमृतसर आ गए। शहर के मशहूर वकील सोमेश बाबू उनके मित्र और सहपाठी थे। सीधे उन्हीं के यहाँ पहुँचे। सोमेश और उनकी पत्नी माया भाभी ने उनका खूब स्वागत किया। सोमेश बाबू बोले, "तुम जब तक चाहो, रहो। यहाँ पुलिस तुम्हारा सुराग नहीं पा सकती। हाँ, थोड़ी दाढ़ी बढ़ा लो, तो अच्छा है।"

देवकांत के मन का बोझ उतर गया। लेकिन इससे भी बड़ी खुशी उन्हें यह देखकर हुई कि गौरी जो गुमसुम और उदास रहती थी, यहाँ आकर खुश है। असल में सोमेश बाबू की भी छोटी बेटी थी - राधा - बड़ी ही चंचल - हँसमुख, गौरी से दो वर्ष बड़ी थी। उसने आते ही गौरी को गप्पों में लगा लिया। दोनों पक्की सहेलियाँ बन गई थीं।

अक्सर देवकांत सुबह-सुबह नाश्ता करके निकलते। रात को देर से लौटते। वकील साहब भी अपने कामों में व्यस्त रहते थे। राधा और गौरी दिन भर साथ-साथ खेलतीं, बातें करतीं। एक दिन राधा ने बातों-बातों में गौरी से कहा, "गौरी, तुझे पता है? हमारे शहर में बापू जी आ रहे हैं... महात्मा गांधी।"

"सचमुच!" गौरी की आँखों में चमक आ गई।

"हाँ, स्कूल में मास्टरजी ने बताया है। परसों आएँगे वह... रेलगाड़ी से। हज़ारों लोग उनके दर्शन करने जाएँगे।" राधा ने बताया। गौरी बोली, "तब तो मैं भी उनके दर्शन करने जाऊँगी। पिताजी बता रहे थे, वह बच्चों को बहुत प्यार करते हैं।"

"पर वह तो चंदा इकट्ठा करने आ रहे हैं न! आजादी की लड़ाई के लिए। तू भला क्या देगी उन्हें?" राधा ने पूछा।

गौरी को देवकांत ने कुछ दिन पहले एक इकन्नी दी थी। गौरी ने अभी तक उसे सँभालकर रखा हुआ था। उदास होकर बोली, "मेरे पास तो यही एक इकन्नी है.."

राधा हँसी। बोली, "तू तो ऐसे कह रही है, जैसे बापू तेरे हाथ से पैसे ले ही लेंगे। अरी पगली, बड़े-बड़े लोग आएँगे वहाँ। इतनी भीड़ में भला कोई पास जाने देगा तुझे?"

गौरी बोली, "अपने पिताजी के साथ जाऊँगी मैं। गांधी जी खूब अच्छी तरह जानते हैं उन्हें।"

अब राधा गंभीर हो गई। बोली, "ठहर, मैं अपनी गुल्लक लाती हूँ। कुछ पैसे होंगे उसमें।"

राधा ने अपनी गुल्लक से पैसे निकाले। साढ़े चार आने थे। उसने वे पैसे गौरी को दे दिए। बोली, "इन्हें भी रख ले। ये मेरी ओर से बापू को दे देना।"

गौरी बोली, "कुल साढ़े पाँच आने हो गए। इतने थोड़े पैसे देना क्या अच्छा लगेगा? इससे तो अच्छा है कुछ फल ले लूँ।"

"वाह, खूब मज़ेदार रहेगा" – राधा ने कहा। फिर दोनों सहेलियाँ देर तक बातें करती रहीं।

उस रात देवकांत लौटे तो गौरी ने कहा, "पिताजी बापू आ रहे हैं.... परसों। आप मुझे उनसे मिलवाने ले चलेंगे न!"

सुनते ही देवकांत का चेहरा सफ़ेद पड़ गया। गांधी जी के आने का उन्हें भी पता चल गया था। पर, वह अभी उनसे मिलना नहीं चाहते थे। जानते थे, पुलिस उनके पीछे पड़ी है। कुछ देर चुप रहकर बोले, "अभी नहीं बेटी! ... कुछ ज़रूरी काम है....।"

पर बेटी की ज़िद थी। देवकांत इनकार न कर सके। उन्होंने हामी भर ली।

जिस दिन महात्मा गांधी को आना था, सुबह से ही प्लेटफ़ार्म पर भीड़ होने लगी थी। सभी उनके दर्शन करना चाहते थे। देवकांत भी एक ओर खड़े थे। गौरी उनके कंधे पर बैठी थी। उनके हाथ में एक छोटी-सी टोकरी थी, जिसमें केले, संतरे और चीकू

थे। लोगों का उत्साह फूटा पड़ रहा था। वे महात्मा गांधी की जयजयकार कर रहे थे 'भारत माता की जय' के नारे लगा रहे थे।

इतने में गाड़ी के आने की सूचना मिली। गाड़ी आकर रुकी, तो लोग उस डिब्बे की ओर दौड़े जिसमें गांधी जी बैठे थे। गांधी जी उस समय पुस्तक पढ़ रहे थे। उनका ध्यान किताब पढ़ने में था। एक हाथ उन्होंने बाहर निकाला हुआ था। लोग जो भी चंदा देते, उसे लेकर वह भीतर रखे थैले में डाल देते, फिर हाथ बाहर निकाल देते।

देखते ही देखते बहुत-सी महिलाओं ने अपने गहने उतारकर दे दिए। सिक्के और नोटों की तो कमी ही न थी। लोगों का उत्साह देखते ही बना था। न जाने कब गौरी देवकांत के कंधे से उतरी। भीड़ में होती हुई गांधी जी के पास पहुँच गई। बोली, "बापू...देखिए मैं आपके लिए क्या लाई हूँ?"

बापू ने किताब एक ओर हटाई, मुसकराकर कहा, "तो लाओ न!"

"ऐसे नहीं बापू! पहले आप बाहर आइए" गौरी ने इठलाकर कहा।

गांधी जी ने किताब नीचे रखी और हँसते हुए बाहर आ गए। उन्होंने गौरी को पास बुला लिया। उससे बातें करने लगे। आसपास लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई। देवकांत भी तब तक आ गए थे। "बापू....बापू.... ये मेरे पिता जी हैं"– गौरी ने कहा।

गांधी जी ने देखा तो देवकांत की शकल उन्हें कुछ-कुछ पहचानी लगी। देवकांत बोले, "आपके आश्रम में आपसे मिल चुका हूँ। आपके कई पत्र भी मेरे पास..."

"देवकांत!" गांधी जी के होंठों से बरबस निकला। दाढ़ी बढ़ी होने के बावजूद वह देत्रकांत को पहचान गए थे।

गौरी ने टोकरी बापू की ओर बढ़ा दी, बोली, "बापू, आपको भूख लगी होगी। ये फल आपके लिए लाई हूँ, खा लीजिए न!"

बापू ने टोकरी रख ली। फिर गंभीर होकर कहा, "लेकिन मेरी भी एक शर्त है।"

"वह क्या?" गौरी अचकचाई।

"वह यह कि बच्चों की चीज़ें मैं मुफ़्त नहीं लेता, बदले में तुम्हें भी कुछ लेना पड़ेगा।" गांधी जी ने हँसते हुए कहा। फिर वह अंदर गए। टोकरी एक तरफ रख दी।

रेलगाड़ी के डिब्बे में फूल मालाओं का ढेर था। वह झट दोनों हाथों में कुछ मालाएँ उठाकर लाए। गौरी को पकड़कर कहा, "ये तुम्हारे लिए!"



गौरी का चेहरा खिल उठा। जैसे दुनिया का अकूत खज़ाना मिल गया हो। देवकांत भी मंद-मंद मुसकरा रहे थे। इतने में गाड़ी चल दी।

देवकांत ने कहा, "गौरी, ये फूल अनमोल हैं। सँभालकर रखना।"

धीरे-धीरे भीड़ छँटने लगी। गौरी पिता की उँगली पकड़ कर चल रही थी। अभी वे प्लेटफ़ार्म से उतरे ही थे कि एकाएक पुलिस के पाँच-सात सिपाही देवकांत की ओर बढ़े – बोले, "मि. देवकांत आपको गिरफ़्तार किया जाता है।"

देवकांत जिस आशंका से घबरा रहे थे, वही हुआ। प्लेटफ़ार्म पर चप्पे-चप्पे पर सरकार के गुप्तचर थे। जब गांधी जी ने देवकांत का नाम लिया, तभी सारा भेद खुल गया। देवकांत फिर कैसे बच पाते।

उधर गौरी हक्की-बक्की खड़ी थी। समझ नहीं पा रही थी कि पुलिस उसके पिता को क्यों पकड़ रही है? देवकांत ने एक व्यक्ति को वकील साहब के घर का पता बता दिया, बोले, "मेरी बेटी को वहाँ पहुँचा दीजिए। आपका एहसानमंद रहूँगा।" फिर वह चुपचाप पुलिसवालों की गाड़ी में बैठ गए।

गौरी भीगी आँखों से पिता को जाते देख रही थी। घर आते ही वह फूट-फूटकर रो पड़ी। वकील साहब और राधा ने किसी तरह उसे चुप कराया। सोमेश बाबू देवकांत को जेल से छुड़ाने की कोशिशों में जुट गए।

शहर में जिसको भी पता चला कि बापू ने गौरी को मालाएँ दी हैं, वह दौड़कर गौरी के पास आता। गौरी माला में से एक फूल निकालकर दे देती। इस तरह देते-देते सिर्फ़ एक फूल बचा। गौरी ने वह किसी को नहीं दिया। चुपचाप भीतर जाकर पिताजी का झोला उठाया। उसमें "वंदेमातरम्' किताब थी जो उसके पिता को बहुत प्रिय थी। वह फूल उस किताब में रख दिया।

अब गौरी गुमसुम, उदास रहने लगी। दिनभर चुपचाप बैठी, कुछ सोचती रहती, कभी-कभी कातर होकर पूछती, "मेरे पिता का क्या कसूर था? कब वह जेल से छूटकर आएँगे?" उसको दिलासा देते-देते खुद सोमेश बाबू की आँखें भीग जातीं। अकेली राधा ही थी जो उसको किसी तरह बहलाए रखती।

आखिर दो वर्ष बाद देवकांत जेल से छूटे। जैसे ही वह घर आए गौरी उनसे लिपट गई। फिर उसे कुछ याद आया, बोली, "ठहरिए....पिताजी!"

वह दौड़कर भीतर गई। किताब उठा लाई। देवकांत ने देखा, उसमें गेंदे का सूखा फूल रखा हुआ था। उन्होंने गौरी की ओर देखकर पूछा, "यह क्या बेटी?"



गौरी बोली, "गांधीजी ने फूल मालाएँ दी थीं न! एक-एक फूल

सब ले गए।... लेकिन एक फूल मैंने बचा लिया, आपके लिए। आपने भी तो भारत माँ की आज़ादी के लिए कष्ट सहे हैं।"

देवकांत ने गौरी को उठाकर गले लगा लिया। उनकी आँखें छलछला उठी थीं।

– देवेंद्र सत्यार्थी

प्रश्न-अभ्यास

1. देवकांत वेश बदलकर काशी से अमृतसर क्यों आए?
2. अमृतसर आकर गौरी प्रसन्न क्यों थी?
3. गौरी से उपहार लेते समय बापू ने क्या शर्त रखी?
4. "गौरी, ये फूल अनमोल हैं। सँभालकर रखना" – देवकांत ने ऐसा क्यों कहा?
5. देवकांत को पुलिस ने क्यों गिरफ़्तार किया?
6. गौरी ने एक फूल क्यों बचा लिया था?

3. सहपाठी

अभी सुबह के सवा नौ बजे हैं।

मोहित सरकार ने गले में टाई का फंदा डाला ही था कि उसकी पत्नी अरुणा कमरे में आई और बोली, "तुम्हारा फ़ोन।"

"अभी कौन फ़ोन कर सकता है भला।"

ठीक साढ़े नौ बजे दफ़्तर जाना मोहित का नियम रहा है। अब घर से दफ़्तर निकलते वक्त 'तुम्हारा फ़ोन' सुनकर उसकी त्यौरियाँ चढ़ गईं।

अरुणा ने बताया – कभी तुम्हारे साथ स्कूल में पढ़ता था।

स्कूल में! .....लो... नाम बताया?

"उसने कहा कि जय नाम बताने पर ही वह समझ जाएगा।"

मोहित सरकार ने कोई तीस साल पहले स्कूल छोड़ा होगा। उसकी क्लास में चालीस लड़के रहे होंगे। अगर वह बड़े ध्यान से सोचे भी तो ज्यादा-से-ज्यादा बीस साथियों के नाम याद कर सकता है और इसके साथ उनका चेहरा भी। सौभाग्य से जय या जयदेव के नाम और चेहरे की याद अब भी उसे है। क्योंकि वह क्लास के सबसे अच्छे लड़कों में एक था। गोरा, सुंदर-सा चेहरा, पढ़ने-लिखने में होशियार, खेल-कूद में भी आगे, हाई जंप में अव्वल कभी-कभी वह ताश के खेल भी दिखाया करता। और हाँ, कैसेबियांका के सुपाठ पर उसने कोई पदक भी जीता था। स्कूल से निकलने के बाद मोहित ने उसके बारे में कभी कोई खोज-खबर नहीं ली। वह आज इतने सालों के बाद दोस्ती के बावजूद और कभी अपने सहपाठी रहे इस आदमी के बारे में कोई खास लगाव महसूस नहीं कर रहा था।

खैर मोहित ने फ़ोन का रिसीवर पकड़ा।

"हैलो...."

"कौन मोहित....। मुझे पहचान रहे हो भाई... मैं वही तुम्हारा जय.....जयदेव बोस। बालीगंज स्कूल के सहपाठी।"

"भई, अब आवाज से तो पहचान नहीं रहा.... हाँ चेहरा ज़रूर याद है... बात क्या है?"

"तुम तो अब बड़े अफ़सर हो गए हो, भाई। मेरा नाम तुम्हें अब तक याद रहा, यही बहुत है।"

"अरे, यह सब छोड़ो...बताओ, क्या बात है?"

"बस... यूँ ही थोड़ी ज़रुरत थी। एक बार मिलना चाहता हूँ तुमसे।"

"कब?"

"तुम जब कहो। लेकिन थोड़ी जल्दी हो तो अच्छा....."

"तो फिर आज ही मिलो। मैं शाम को छह बजे तक घर आ जाता हूँ। तुम सात बजे आ सकोगे?"

"क्यों नहीं....ज़रूर आऊँगा। अच्छा तो धन्यवाद। तभी सारी बातें होंगी।"

अभी-अभी खरीदी गई आसमानी रंग की कार में दफ़्तर जाते हुए मोहित सरकार ने स्कूल में घटी कुछ घटनाओं को याद करने की कोशिश की। हैडमास्टर गिरींद्र सर की नज़र और बेहद गंभीर स्वभाव के बावजूद स्कूली दिन भी सचमुच कैसी-कैसी खुशियों से भरे थे। मोहित खुद भी एक अच्छा विद्यार्थी था। शंकर, मोहित और जयदेव इन तीनों में ही प्रतिद्वंद्विता चलती रहती थी। पहले, दूसरे और तीसरे नंबर पर इन्हीं तीनों का बारी-बारी से कब्जा रहता। छठी से लेकर मोहित सरकार और जयदेव बोस एक साथ ही पढ़ते रहे थे। कई बार एक ही बैंच पर बैठकर पढ़ाई की थी। फुटबॉल में भी दोनों का बराबरी का स्थान था। मोहित 'राइट-इन' खिलाड़ी था तो जयदेव 'राइट-आउट'। तब मोहित को जान पड़ता कि यह दोस्ती आज की नहीं, युगों-युगों की है। लेकिन स्कूल

छोड़ने के बाद दोनों के रास्ते अलग-अलग हो गए। मोहित के पिता रईस आदमी थे, कलकत्ता के नामी वकील। स्कूल की पढ़ाई ख़त्म करने के बाद मोहित का दाखिला एक अच्छे से कॉलेज में हो गया और यहाँ की पढ़ाई समाप्त हो जाने के दो साल बाद ही उसकी नियुक्ति एक बड़ी कारोबारी कंपनी के अफ़सर के रूप में हो गई। जयदेव किसी दूसरे शहर में किसी कॉलेज में भर्ती हो गया था। दरअसल उसके पिताजी की नौकरी बदली वाली थी। सबसे हैरानी की बात यह थी कि कॉलेज में जाने के बाद मोहित ने जयदेव की कमी कभी महसूस नहीं की। इसकी जगह कॉलेज के एक दूसरे दोस्त ने ले ली। बाद में यह दोस्त भी बदल गया। कॉलेज की पढ़ाई का समय पूरा हो जाने के बाद मोहित की नौकरी वाली जिंदगी शुरू हो गई। मोहित अपने दफ़्तर की जिंदगी में चार बड़े अफ़सरों में एक है और उसके सबसे अच्छे दोस्तों में उसका एक ही सहकर्मी है। स्कूल के साथियों में एक प्रज्ञान सेनगुप्त है....जिससे कभी-कभी क्लब में मुलाकात हो जाती है। वह भी किसी बड़े कार्यालय में कोई अधिकारी है। लेकिन स्कूल की यादों में प्रज्ञान की कोई जगह नहीं है। लेकिन जयदेव की, जिसके साथ पिछले तीस सालों से मुलाकात तक नहीं हुई है....उसकी यादों ने अपनी काफी जगह बना रखी है। मोहित ने उन पुरानी बातों को याद करते हुए इस बात की सच्चाई को बड़ी गहराई से महसूस किया।

मोहित का दफ़्तर सैंट्रल एवेन्यू में है। चौरंगी और सुरेन्द्र बनर्जी रोड के मोड़ पर आते ही गाड़ियों की भीड़, बसों के हार्न और बस के धुँए से मोहित सरकार की यादों की दुनिया ढ़ह गई और वह सामने खड़ी दुनिया के सामने था। अपनी कलाई घड़ी पर नजर दौड़ाते हुए ही वह समझ गया कि वह आज तीन मिनट देर से दफ़्तर पहुँच रहा है।

दफ़्तर का काम निपटा कर मोहित जब ली रोड स्थित अपने घर पर पहुँचा तो बालीगंज गवर्नमेंट स्कूल के बारे में उसके मन में रत्तीभर याद नहीं बची थी। यहाँ तक कि वह सुबह टेलीफोन पर हुई बातों के बारे में भी भूल चुका था। उसे इस बात की याद तब आई जब उसका नौकर विपिन ड्राइंग रूम में आया और उसने उसके हाथों में एक पुर्जा थमाया। यह किसी

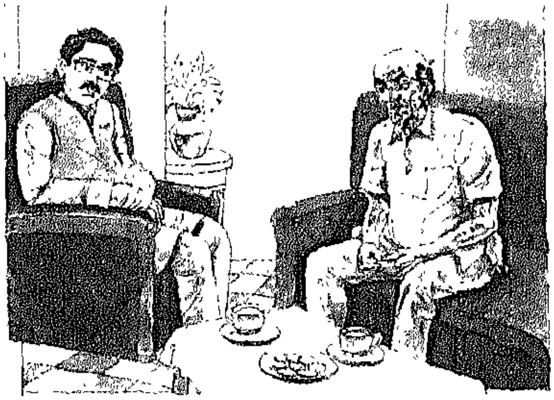
लेखन-पुस्तिका से फाड़ा गया पन्ना था – मोड़ा हुआ। इस पर अंग्रेजी में लिखा था – "जयदेव बोस...एज पर अपाइन्टमेंट।"

रेडियो पर बी.बी.सी से आ रही खबरों को सुनना बंद कर मोहित ने विपिन को कहा, "उसे अंदर आने को कहो।" लेकिन उसने दूसरे ही पल यह महसूस किया कि जय इतने दिनों के बाद मुझसे मिलने आ रहा है, उसके नाश्ते के लिए कुछ मँगा लेना चाहिए था। दफ़्तर से लौटते हुए पार्क स्ट्रीट से वह बड़े आराम से केक या पेस्ट्री वगैरह कुछ ला ही सकता था, लेकिन उसे जय के आने की बात याद ही नहीं रही। पता नहीं उसकी पत्नी ने इस बारे में कोई इंतजाम कर रखा है या नहीं।

"पहचान रहे हो......?"

इस सवाल को सुनकर और इसके बोलनेवाले की ओर देखकर मोहित सरकार की मनोदशा कुछ ऐसी हो गई कि बैठक वाले कमरे की सीढ़ी पार करने के बाद ही उसने एक कदम और नीचे रखा जबकि वहाँ कोई सीढ़ी नहीं थी।

कमरे की चौखट पार करने के बाद जो सज्जन अंदर दाखिल हुए थे, उन्होंने एक ढीली-ढीली सूती पतलून पहन रखी थी। इसके ऊपर एक सस्ती छापे वाली सूती कमीज। दोनों पर कभी इस्तरी की गई हो, ऐसा नहीं जान पड़ा। कमीज के कॉलर से जो सूरत झांक रही थी, उसे देखकर मोहित अपनी याद में बसे जयदेव को उसका कोई तालमेल नहीं बिठा सका। आनेवाले का चेहरा सूखा, गाल पिचके, आँखें धँसी, देह का रंग धूप से तप-तपकर काला पड़ गया था। इस चेहरे पर तीन-चार दिनों की कच्ची पक्की मूँछें उगी थीं, माथे के ऊपर एक मस्सा और कान के पास बेतरतीब ढंग से फैले ढेर सारे पके हुए बाल थे।



उस आदमी ने इस सवाल को हँसते हुए पूछा था – उसकी दाँतों की कतार भी मोहित को दीख पड़ी। पान खा-खाकर सड़-से गए ऐसे दाँतों के साथ हँसने वाले को पहले अपना मुँह हथेली से ढाँक लेना चाहिए।

"काफी बदल गया हूँ....है न.....?"

"बैठो।"

मोहित अब तक खड़ा था। सामने वाले सोफे पर उसके बैठ जाने के बाद मोहित भी अपनी जगह पर बैठ गया। मोहित के विद्यार्थी जीवन की तस्वीर उसके अलबम में पड़ी है। उस तस्वीर में चौदह साल के मोहित के साथ आज के मोहित को पहचान पाना बहुत मुश्किल नहीं है। तो फिर जय को पहचान पाना इतना कठिन क्यों हो रहा है? तीस सालों में क्या चेहरे में इतना बदलाव आ जाता है।

"तुम्हें पहचान पाने में कोई मुश्किल नहीं हो रही है? रास्ते पर भी देख लेता तो पहचान जाता" – भला आदमी आते ही शुरू हो गया था, "दरअसल मुझ पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा है। कॉलेज में ही था कि पिताजी गुजर गए। मैं पढ़ना-लिखना छोड़कर नौकरी की तलाश में भटकता रहा। और बाकी तो तुम्हें पता है ही। अच्छी किस्मत और सिफारिश न हो तो आज के जमाने में हम जैसे लोगों के लिए...."

"चाय तो पिओगे?"

"चाय....हाँ....लेकिन।"

मोहित ने विपिन को बुलाकर चाय लाने को कहा। इसके साथ ही उसे यह सोचकर राहत मिली कि केक या मिठाई न भी हो तो कोई खास बात नहीं। इसके लिए बिस्कुट ही काफी होगा।

"ओह"... उस भले आदमी ने कहा, "आज दिन भर न जाने कितनी पुरानी बातें याद करता रहा। ...तुम्हें क्या बताऊँ....."

मोहित का भी कुछ समय ऐसे ही बीता है। लेकिन उसने ऐसा बुरा कुछ कहा नहीं।

"एल.सी.एम. और जी.सी.एम. की बातें याद हैं?"

मोहित को इस बारे में पता न था लेकिन प्रसंग आते ही उसे याद आ गया - एल. सी.एम. यानी पी.टी. मास्टर लालचांद मुखर्जी और जी.सी.एम. यानी गणित के टीचर गोपेन्द्र चन्द्र मित्तर।

"स्कूल में ही, पानी टंकी के पीछे हम दोनों को ज़बरदस्ती आस-पास खड़ा कर बॉक्स कैमरे से किसने हमारी तस्वीर खींची थी, याद है?"

अपने होठों को कोने पर एक मीठी मुस्कान चिपकाकर मोहित ने यह जता दिया कि उसे उसकी याद है। आश्चर्य, ये सब तो सच्ची बातें हैं और अब भी यह जयदेव न हो तो इतनी बातों के बारे में इसे पता कैसे चला?

"स्कूली जीवन के ये पाँचों साल, मेरे जीवन के सबसे अच्छे साल थे", आनेवाले ने बताया और फिर अफ़सोस जताया, "वैसे दिन अब दोबारा कहाँ से आएँगे, भाई?"

"लेकिन तुम तो लगभग मेरी ही उम्र के थे", – मोहित इस बात को कहे बिना रह नहीं पाया।

"तुमसे कोई तीन-चार महीने छोटा ही हूँ।"

"तो फिर तुम्हारी यह हालत कैसे हुई? तुम तो गंजे हो गए?"

"परेशानी.... और तनाव के सिवा और क्या?" आगंतुक ने कहा, "हालांकि गंजापन तो हमारे परिवार में पहले से ही रहा है। मेरे बाप और दादा दोनों ही गंजे हो गए थे सिर्फ़ पैंतीस साल की उम्र में। मेरे गाल धंस गए हैं – हाड़ तोड़ मेहनत की वजह से और ढंग का खाना कहाँ नसीब होता है? और तुम लोगों की तरह तो मेज-कुर्सी पर बैठकर तो हम लोग काम नहीं करते। पिछले सात साल से एक कारखाने में काम कर रहा हूँ। इसके बाद मेडिकल सेल्समैन के नाते इधर-उधर की भाग-दौड़, बीमे की दलाली, इसकी दलाली....उसकी दलाली...। किसी एक काम में ठीक से जुटे रहना अपने नसीब में कहाँ। अपने ही जाल में फँसे मकड़े की तरह इधर-उधर घूमता रहता हूँ। कहते हैं न, देह धरे

का दण्ड। देखना यह है के देह कहाँ तक साथ देती है। तुम तो मेरी हालत देख ही रहे हो।"

विपिन चाय ले आया था। चाय के साथ संदेश और समोसा भी। गनीमत है, पत्नी ने इस बात का खयाल रखा था। लेकिन अपने सहपाठी की इस टूटी-फूटी तस्वीर को देखकर वह क्या सोच रही होगी – इसका अंदाज़ नहीं हो पाया।

"तुम नहीं लोगे?" आगंतुक ने पूछा।

मोहित ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं, अभी-अभी पी है।"

"संदेश तो ले लो।"

"नहीं...तुम शुरू तो करो....।"

भले आदमी ने समोसा उठाकर मुँह में रखा और इसका एक टुकड़ा चबाते-चबाते बोला, "बेटे का इम्तिहान सिर पर है। और मेरी परेशानी यह है मोहित भाई कि मैं उसके लिए फीस कहाँ से जुटाऊँ, कुछ समझ में नहीं आता।"

अब आगे कुछ कहने की ज़रूरत नहीं थी। मोहित समझ गया। इसके आने के पहले ही उसे समझ लेना चाहिए था कि माजरा क्या है? आर्थिक सहायता और इसके लिए प्रार्थना। आखिर यह कितनी रकम की मदद माँगेगा? अगर बीस-पचास रुपए दे देने पर भी पिंड छूट सके तो यह खुशकिस्मती ही होगी। अगर यह मदद नहीं दी गई तो यह बला टल जाएगी, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

"मेरा बेटा बड़ा ही होशियार है, पता है। अगर उसे अभी मदद नहीं मिली तो उसकी पढ़ाई बीच में ही रुक जाएगी.... मैं जब-जब इस बारे में सोचता हूँ तो मेरी रातों की नींद हराम हो जाती है।"

प्लेट से दूसरा समोसा उड़ चुका था। मोहित ने मौका पाकर किशोर जयदेव के चेहरे से इस आगंतुक के चेहरे को मिलाकर देखा और अब उसे पूरा यकीन हो गया कि उस बालक के साथ इस अधेड़ आदमी का कहीं कोई मेल नहीं।

"इसलिए कह रहा था कि", चाय की चुस्की भरते हुए आगंतुक ने आगे कहा, "अगर तुम सौ-डेढ़ सौ रुपए अपने इस पुराने दोस्त को दे सको तो..."

"वैरी सॉरी।"

"क्या?"

मोहित ने मन-ही-मन यह सोच रखा था कि अगर बात रुपए-पैसे की आई तो वह एकदम 'ना' कर देगा। लेकिन अब जाकर उसे लगा कि इतनी रुखाई से मना करने की ज़रूरत नहीं थी। इसीलिए अपनी गलती को सुधारते हुए उसने बड़ी नरमी से कहा, "सॉरी भाई, अभी मेरे पास कैश रुपए नहीं हैं।"

"मैं कल आ सकता हूँ।"

"मैं कल कलकत्ता के बाहर रहूँगा। तीन दिनों के बाद लौटूँगा। तुम रविवार को आ जाओ।"

"रविवार को।"

आगंतुक थोड़ी देर तक चुप रहा। मोहित ने भी मन-ही-मन में कुछ ठान लिया था। यह वही जयदेव है, इसका कोई प्रमाण नहीं। कलकत्ता के लोग एक दूसरे को ठगने के हजार तरीके जान गए हैं। किसी के पास से तीस साल पहले के बालीगंज स्कूल की कुछेक घटनाओं के बारे में जान लेना कोई मुश्किल काम नहीं था।

"मैं रविवार को कितने बजे आ जाऊँ?"

"सवेरे-सवेरे ही ठीक रहेगा।"

शुक्रवार को ईद की छुट्टी है। मोहित ने पहले से ही तय कर रखा है कि वह अपनी पत्नी के साथ बासईपुर के एक मित्र के यहाँ, उनकी बागानबाड़ी में जाकर सप्ताहांत मनाएगा। वहाँ दो-तीन दिन रुककर रविवार की रात को ही घर लौट पाएगा। इसलिए वह भला आदमी जब रविवार की सुबह के समय घर पर आएगा तो मुझसे मिल नहीं पाएगा। इस छल की जरूरत एकदम नहीं पड़ती, अगर मोहित ने दो टूक शब्द में उससे 'ना' कह

दिया होता। लेकिन ऐसे भी लोग होते हैं जो एकदम से ऐसा नहीं कर सकते। मोहित ऐसे ही स्वभाव का आदमी है। रविवार को उससे मुलाकात न होने के बावजूद कोई दूसरा रास्ता ढूंढ निकाले तो मोहित उससे भी बचने की कोशिश करेगा। शायद इसके बाद किसी दूसरी परेशानी का सामना करने की नौबत नहीं आएगी।

आगंतुक ने आखिरी बार चाय की चुस्की ली और कप को नीचे रखा ही था कि कमरे में एक और सज्जन आ गए। ये मोहित के अंतरंग मित्र थे – वाणीकांत सेन। दो अन्य सज्जनों के भी आने की बात है, इसके बाद यहीं ताश का अड्डा जमेगा। उन्होंने उस भले आगंतुक की तरफ शक की नजरों से देखा। मोहित इसे भाँप गया। आगंतुक के साथ अपने दोस्त का परिचय कराने की बात मोहित बुरी तरह टाल गया।

"अच्छा तो फिर मिलेंगे....अभी चलता हूँ", कहकर आगंतुक उठ खड़ा हुआ, "तू मुझ पर यह उपकार कर दे, मैं सचमुच तेरा ऋणी रहूँगा।"

उस भले आदमी के चले जाने के बाद वाणीकांत ने मोहित की ओर भौंहे चढ़ाकर देखा और पूछा, "यह आदमी तुम्हें 'तू' कहकर बातें कर रहा था – बात क्या है?"

"इतनी देर तक तो 'तुम' ही कह रहा था। बाद में तुम्हें सुनाने के लिए अचानक 'तू' कह गया।"

"कौन है वह आदमी?"

"मोहित कोई जवाब दिए बिना शैल्फ़ की ओर चढ़ गया और उस पर से एक पुराना फोटो अलबम बाहर निकाल लाया। फिर इसका एक पन्ना उलटकर वाणीकांत के सामने बढ़ा दिया।"

"यह तुम्हारे स्कूल का ग्रुप है शायद?"

"हाँ, बोटानिक्स में हम सब पिकनिक के लिए गए थे" – मोहित ने बताया।

"ये पाँचों कौन-कौन हैं?"

"मुझे नहीं पहचान रहे?"

"रुको, जरा देखने तो दो।"

अलबम को अपनी आँखों के थोड़ा नजदीक ले जाते ही बड़ी आसानी से वाणीकांत ने अपने मित्र को पहचान लिया।

"अच्छा, अब मेरी बाईं और खड़े इस लड़के को अच्छी तरह देखो।"

तस्वीर को अपनी आँखों के कुछ और नजदीक लाकर वाणीकांत ने कहा, "हाँ, देख लिया।"

"अरे यही तो है वह भला आदमी, जो अभी-अभी यहाँ से उठकर गया" -- मोहित ने बताया।

"स्कूल से ही तो जुआ खेलने की लत नहीं लगी इसे?" अलबम को फर्राटे से बंद कर सोफे पर फैंकते हुए वाणीकांत ने फिर कहा, "मैंने इस आदमी को कम से कम तीस-बत्तीस बार रेस के मैदान में देखा है।"

"तुम ठीक कह रहे हो....", मोहित सरकार ने हामी भरी और इसके बाद आगंतुक के साथ क्या-क्या बातें हुई, इस बारे में संक्षेप में बताया।

"अरे थाने में खबर कर दो", वाणीकांत ने उसे सलाह दी, "कलकत्ता अब ऐसे ही चोरों-लुटेरों और उचक्कों का डिपो हो गया है। इस तस्वीर वाले लड़के का ऐसा जुआरी बन जाना नामुमकिन है, इम्पॉसिबल।"

मोहित हौले से मुस्कराया और फिर बोला, "रविवार को जब मैं उसे घर पर नहीं मिलूँगा तो पता चलेगा। मुझे लगता है इसके बाद यह इस तरह की हरकतों से बाज आएगा।"

अपने बासईपुर वाले मित्र के यहाँ पोखर की मछली, पॉल्टरी के ताजे अंडे और पेड़ों में लगे आम, अमरूद, जामुन, डाब और दूसरे फल खाकर, माली के पेड़ के नीचे सतरंजी बिछाकर और सीने के तकिए लगाकर ताश खेलकर तन-मन की सारी थकान और जकड़न दूर कर मोहित सरकार रविवार की रात ग्यारह बजे जब अपने घर लौटा तो अपने नौकर विपिन

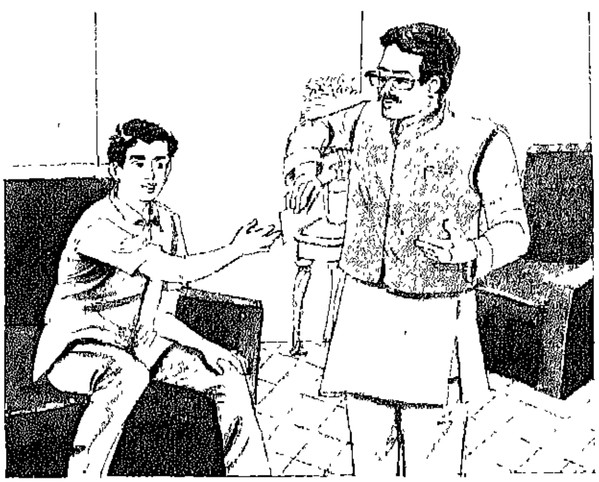
से उसे यह खबर मिली कि उस दिन शाम को जो सज्जन आए थे - आज सुबह भी घर आए थे।

"कुछ कहकर गए हैं।"

"जी नहीं" – विपिन ने बताया।

चलो, जान बची। एक छोटी-सी जुगत से बड़ी बला टली। अब वह नहीं आएगा। पिंड छूटा।

लेकिन नहीं। आफत रात भर के लिए ही टली थी। दूसरे दिन सुबह यही कोई आठ बजे, मोहित जब अपनी बैठक में अखबार पढ़ रहा था तो विपिन ने उसके सामने एक और तहाया हुआ काग़ज़ी पुर्जा लाकर रख दिया। मोहित ने उसे खोलकर देखा। यह तीन पंक्तियों की चिट्ठी थी –



भाई मोहित,

मेरे बायें पैर में मोच आ गई है, इसलिए बेटे को भेज रहा हूँ। सहायता के तौर पर जो थोड़ा-बहुत बन सके, इसके हाथ में दे देना। बड़ी कृपा होगी। निराश नहीं करोगे, इस आशा के साथ, इति।

तुम्हारा-जय

मोहित समझ गया अब कोई चारा नहीं है। जैसे भी हो, थोड़ा बहुत देकर जान छुड़ानी है– यह तय कर उसने नौकर को बुलाया और कहा, "ठीक है, छोकरे को बुलाओ।"

थोड़ी देर बाद एक तेरह-चौदह साल का लड़का दरवाजे से अंदर दाखिल हुआ। मोहित के पास आकर उसने उसे प्रणाम किया और फिर कुछ कदम पीछे हट कर चुपचाप खड़ा हो गया।

मोहित उसकी तरफ़ कुछ देर तक बड़े गौर से देखता रहा। इसके बाद कहा, "बैठ जाओ।"

लड़का थोड़ी देर तक किसी उधेड़-बुन में पड़ा रहा फिर सोफ़े के एक किनारे, अपने दोनों हाथों को गोद में रखकर बैठ गया।

"मैं अभी आया।"

मोहित ने दूसरे तल्ले पर जाकर चाबियों का गुच्छा निकाला। इससे आलमारी खोलकर पचास रुपये के चार नोट बाहर निकाले, इन्हें एक लिफ़ाफ़े में भरा और फिर आलमारी बंद कर नीचे बैठक में वापस आ गया।

"क्या नाम है तुम्हारा?"

"जी, संजय कुमार बोस।"

"इसमें रुपए हैं। बड़ी सावधानी
से ले जाना होगा।"

लड़के ने सिर हिलाकर हामी भरी।

"कहाँ रखोगे?"

"इधर, ऊपर की जेब में।"

"ट्राम से जाओगे या बस से?"

"जी, पैदल।"

"पैदल! तुम्हारा घर कहाँ है?"

"मिर्जापुर स्ट्रीट में।"

"भला इतनी दूर पैदल ही जाओगे?"

"पिताजी ने पैदल ही आने को कहा है।"

"अच्छा तो फिर एक काम करो। तुम एक घंटा यहीं बैठो...ठीक है। नाश्ता कर लो। यहाँ ढेर सारी किताबें हैं, इन्हें देखो। मैं नौ बजे दफ़्तर निकलूँगा। मुझे दफ़्तर छोड़ने के बाद गाड़ी तुम्हें तुम्हारे घर छोड़ देगी। तुम ड्राईवर को अपने घर तक ले जा सकोगे न" – मोहित ने पूछा।

लड़के ने सिर हिलाकर कहा, "जी हाँ।"

मोहित ने विपिन को बुलाया और उस लड़के संजय के लिए चाय वगैरह लाने का आदेश देकर दफ़्तर के लिए तैयार होने ऊपर अपने कमरे में चला आया।

आज वह अपने को बहुत हल्का महसूस कर रहा था और साथ ही बहुत खुश भी। जय को देखकर पहचान न पाने के बावजूद उसके बेटे संजय में उसने अपना तीस साल पुराना सहपाठी पा लिया था।

– सत्यजित रे

प्रश्न-अभ्यास

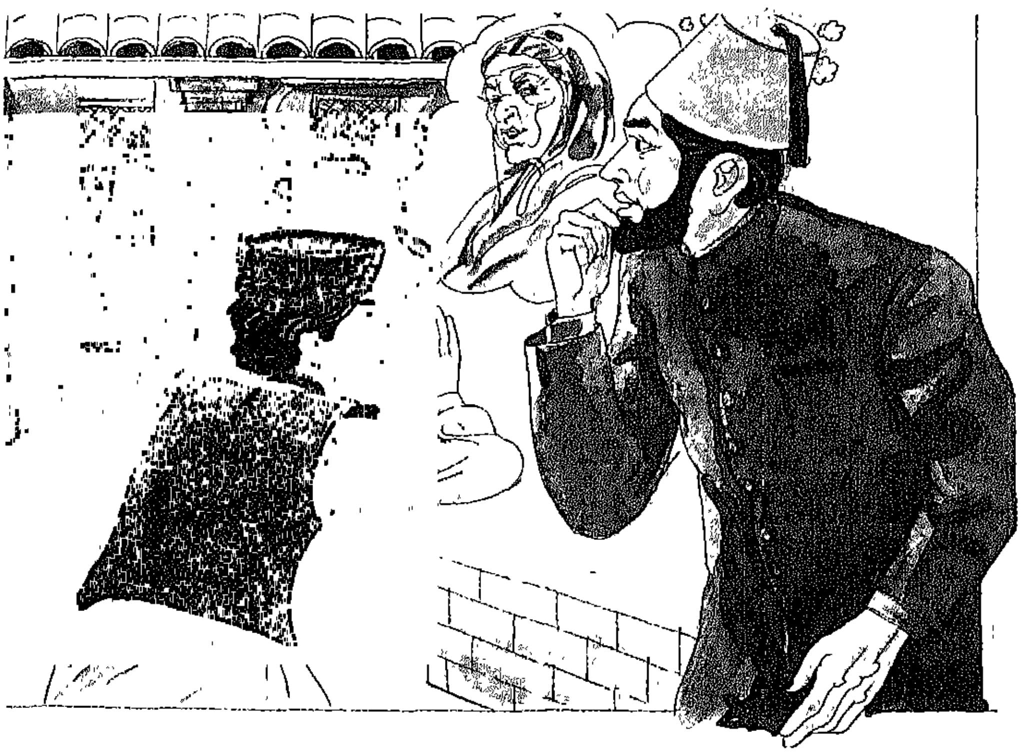
1. मोहित सरकार को अपने स्कूल के सहपाठियों में जयदेव की ही याद क्यों विशेष रूप से बनी रही?
2. मोहित के लिए तीस साल बाद जयदेव को पहचानना क्यों मुश्किल हो रहा था, जबकि जयदेव को ऐसी कोई कठिनाई नहीं हुई?
3. मोहित ने जयदेव को रुपए लेने के लिए रविवार को क्यों बुलाया?
4. मोहित ने जयदेव के पुत्र को आवश्यकता से अधिक रुपए क्यों दे दिए?
5. मोहित ने संजय को पैदल क्यों नहीं जाने दिया?
6. मोहित संजय को रुपए देकर अपने आपको हल्का क्यों महसूस कर रहा था?

4. माँ

मास्टर हमीद दिल्ली के एक मदरसे में पढ़ाते थे। उनका घर मुर्शिदाबाद में था। उनके बाप बढ़ई का काम करते थे। हमीद की तालीम पहले तो मोहल्ले की मस्जिद में हुई। फिर बाप ने तहसील के मदरसे में दाखिल करा दिया। हमीद उर्दू मिडिल का इम्तिहान देने वाला था कि बस्ती में प्लेग की बीमारी फैली। इस महामारी में हमीद के बाप भी चल बसे। हमीद की माँ के पास कफ़न-दफ़न के बाद कुल सत्ताईस रुपए बचे। हमीद मिडिल के इम्तिहान में पास हो गया था। अब उसे अंग्रेज़ी पढ़ने का शौक हुआ। जब उसने सोचा कि किस शहर में जाकर अंग्रेज़ी पढ़ूँ तो बस एक दिल्ली का ख्याल मन में आया। शायद इसलिए कि बचपन में कहानियों में दिल्ली शहर का ज़िक्र सुना था। माँ से पंद्रह रुपए लिए और दिल्ली पहुँच गया। शहर में घंटो घूमने के बाद गली कासिम जान में अपने पड़ोसी नसरुल्लाह खाँ कांस्टेबल के घर पहुँचा। नसरुल्लाह खाँ ने, जो हमीद के बाप को अच्छी तरह जानते थे, हमीद की बड़ी खातिर की और अपने छोटे-से मकान के दरवाज़े में उसके लिए एक छोटा-सा खटोला डाल दिया। हमीद अब यहीं रहने लगा। एक मदरसे में नाम भी लिख गया और तीन साल में वह दसवें दर्जे तक पहुँच गया। इसी समय में हमीद ने अपनी जमात के एक लड़के को, जो हिसाब में कमज़ोर था, हिसाब पढ़ाना शुरू कर दिया। उस लड़के का बाप हमीद को सात रुपया महीना देने लगा। हमीद ने नसरुल्लाह खाँ से कहा कि अब मेरे पास दाम है। आप इजाजत दें तो मैं भटियारे के यहाँ से रोटी खा लिया करूँ। नसरुल्लाह खाँ ने कुछ इस तरह से कहा – "साहबज़ादे, कुछ बेवकूफ़ हुए हो।" हमीद की फिर हिम्मत न पड़ी कि कुछ कहे। मदरसे में सरदियों की छुट्टी हुई। नसरुल्लाह खाँ ने छुट्टी में मुर्शिदाबाद जाने का इरादा किया तो हमीद को साथ लेते गए।

उस ज़माने में हमीद की माँ के पास बस अपने शौहर के वक्त के बारह रुपए थे और आँगन में कटहल का पेड़, जो हर साल पच्चीस-तीस रुपए में बिक जाता था। मगर जब हमीद घर पहुँचा तो माँ ने एक रिश्तेदार के यहाँ उसकी शादी का सारा बंदोबस्त कर रखा था। शादी जैसे-तैसे हो गई। शादी के सातवें रोज़ हमीद दिल्ली वापस चला आया। यहाँ आकर इम्तिहान की तैयारी में लग गया। मार्च में इम्तिहान हुआ और वह दूसरे दर्जे में पास हो गया। अब नौकरी की फिक्र हुई। बहुत दिन इधर-उधर मारे-मारे फिरने के बाद एक मदरसे में काम करने का मौका मिला।

हमीद को अब बीस रुपए महीना मिलते थे। उसने फिर हिम्मत करके नसरुल्लाह खाँ से कहा – "चाचा, अगर इजाज़त दें तो मैं अलग कोई कोठरी ले लूँ। नसरुल्लाह खाँ ने कहा – "अच्छा मियाँ, तुम्हारी यही राय है तो ले लो।" और कुछ देर के बाद बोले – "मैं



खुद सस्ता-सा मकान ढूँढ़ दूँगा।" हमीद खुद सोच रहा था कि अब अपनी बीवी को जाकर ले आए। तीन रुपए माहवार का एक छोटा-सा बे-आँगन का घर मिलते ही वह तीन दिन की छुट्टी लेकर घर गया और अपनी बीवी को साथ ले आया। गरीब माँ फिर अकेली रह गई।

बीवी को दिल्ली आये सात बरस हो गए। इस ज़माने में हमीद के यहाँ तीन लड़के हुए और एक लड़की, जिनमें से एक लड़का और एक लड़की मर गए। उधर मदरसे में भी काम बढ़ता गया। तनख्वाह अब उसकी तीस रुपए थी। और दस रुपए महीने पर एक लड़के को उसके घर पर भी पढ़ाया करता था। मगर दिल्ली का खर्च, बाल-बच्चों का साथ। गरीब हमीद के पास बचता-बचाता कुछ नहीं था। इसलिए माँ के खत पर खत आते, खुद भी उसका जी बहुत चाहता था, मगर जाने की नौबत न आती थी।

मास्टर हमीद सुबह मोहल्ले की मस्जिद में नमाज़ पढ़ते और तब फिर कोई काम करते। नमाज़ पढ़कर लौटते तो एक सत्तर बरस की सफ़ेद बालों और झुकी कमर वाली धोबिन 'जुनकिया' रास्ते में अपनी लाठी लिए घाट पर जाती मिलती। न जाने क्या बात हुई कि सात-आठ दिन से जुनकिया न मिली। कोई ऐसी बात न थी, मगर आठवें दिन जब मास्टर हमीद सुबह-सुबह मदरसे जाने के लिए निकले तो उनसे रहा नहीं गया। उन्होंने पास वाले घर की ड्योढ़ी में कदम रखा और एक लड़के से, जो सामने था, पूछा, "लड़के, अमाँ जुनकिया धोबिन का क्या हाल है?" लड़के न कहा, "जुनकिया तो कल रात को एक बजे मर गई। उसकी बिरादरी वाले कल जमुना पर उसे फूँक भी आए।"

मास्टर हमीद का बेचारी जुनकिया से क्या वास्ता। मगर यह खबर सुनकर उनका कलेजा धक्-से हो गया। रास्ते-भर सिर झुकाए न जाने क्या सोचते रहे। मदरसे पहुँचे तो उदास-उदास। साथियों ने पूछा भी, "कहिए मिज़ाज कैसा है?" यह कहकर कि कोई बात नहीं, टाल दिया। घर आए तो भी सुस्त-सुस्त। बीवी ने पूछा तो उसे भी कुछ न बताया, मगर तीसरे रोज़ बकरीद की छुट्टी होने वाली थी। हमीद ने दो दिन की छुट्टी की

दरख़्वास्त दी और ऐन बकरीद के दिन मुर्शिदाबाद का टिकट ले रेल में सवार हो गया। ईद का दिन रेल में कटा। न नमाज़ न कुरबानी। मगर दिन-भर उस सफ़ेद सिर का ध्यान लगा रहा, जिसने बरसों सोते वक्त उसके बिस्तर पर झुककर दुआएँ दी थीं, उस गोद का – जिसमें बरसों उसने आराम किया था उस चेहरे का – जिसे देखकर उसकी सारी परेशानियाँ दूर हो जाती थीं, और जिसे अब कोई सात बरस से न देखा था।

हमीद कोई बुरा बेटा न था। कोई यह भी न समझे कि माँ की मुहब्बत उसके दिल में न थी या जोरू-बच्चों में पड़कर वह अपनी माँ को भूल गया था। वह साल में तीन-चार मर्तबा अपनी माँ को चार-चार, पाँच-पाँच रुपए मनीआर्डर भेज देता था और यह रकम इस गरीब बाल-बच्चों वाले मुदर्रिस के लिए बहुत थी। मगर माँ को खत लिखता था तो बच्चों के हाथ में कलम देकर खत पर कुछ-न-कुछ दादी के लिए लिखा देता था। उसकी बीवी ने भी कुछ लिखना-पढ़ना सीख लिया था। वह भी बराबर अपने हाथ से खत में सलाम लिखती थी। माँ का खत भी तकरीबन हर महीने आता-जाता था। उसमें बस्ती की, इधर-उधर की खबरें होतीं और हमेशा यह सवाल कि बेटा, घर कब आएगा। माँ यह ख़त नवासी दर्जिन से लिखवाया करती थी। उसकी लिखाई ऐसी कीड़े-मकौड़ों की-सी होती कि ख़त का बहुत-सा हिस्सा मुश्किल से पढ़ा जाता। मगर यह सवाल हमेशा बहुत साफ़-साफ़ कार्ड पर लिखा होता था। इसका ज़वाब हमीद भी हर बार यही लिख देता – "इंशा अल्लाह! आमों के मौसम में।" मगर हर साल आमों का मौसम गुज़र जाता था और माँ को बेटे की शक्ल देखनी नसीब नहीं होती थी। हमीद चाहता था कि सारे कुनबे को साथ लेकर जाए। फिर इतने दिन से नौकर था, माँ के लिए और दूसरे सगे-संबंधियों और पड़ोसियों के लिए दिल्ली के तोहफे भी ले जाए, पर सबके लिए कभी दाम न हो पाए। सात बरस इरादे-ही-इरादे में कट गए। मगर जुनकिया की मौत की खबर ने न जाने हमीद के दिल पर क्या असर किया कि वह अकेला ही चल खड़ा हुआ।

हाँ तो बकरीद के दिन सूरज डूबने से कोई घंटा-भर पहले मास्टर हमीद मुर्शिदाबाद पहुँचे। खूब ज़ोर की बारिश हो रही थी। मास्टर साहब के पास बस एक छतरी थी, कुछ और सामान तो साथ था नहीं। छतरी लगाए यों ही सीधे घर पर गए। घर का दरवाजा बंद था। उन्होंने जंज़ीर खटखटाई। कोई न बोला। फिर ज़ोर से खटखटाई। किसी ने ज़वाब न दिया। छतरी नीचे रखकर दोनों हाथों से दरवाज़ा खूब ठोका और दो-एक दफ़ा बेसाख्ता जोर से "अम्माँ-अम्माँ" मास्टर हमीद के मुँह से निकल गया तो एक कोठरी के अंदर से किसी ने बैठी हुई आवाज़ में जवाब दिया – "यह कौन है अम्माँ वाला? यहाँ किसी की अम्माँ नहीं रहती।" मास्टर साहब बोले – "अरे भाई हमीद की माँ का घर यही तो है न?" तो एक छोटा-सा आदमी दरवाज़े पर आया। यह ऐवज़ कसाई का बेटा लच्छू था। उसने कोई चार बरस हुए, हमीद की माँ से यह मकान ख़रीद लिया था। उसने बस एक-दो जुम्लों में यह सब कहानी हमीद से कह दी और बताया कि तुम्हारी माँ अब नवासी दर्जिन का जो घर कोने में है उसमें रहती है।

लच्छू ने यह कहकर दरवाज़ा बंद कर लिया। लेकिन मास्टर हमीद के एक-दो मिनट तक तो कदम ही न उठे। ऐसा मालूम हुआ कि किसी ने दिल में तीर मारा और काम तमाम कर दिया। मकान बिक गया? और मुझे खबर तक न हुई? या अल्ला, माँ पर इतनी तंगी थी? मैं तो समझा था कि कुछ अब्बा ने छोड़ा होगा, कुछ मैं भेज देता था कुछ आमदनी कटहल के पेड़ से हो जाती होगी और काम चलता होगा। मगर यहाँ तो अपनी झोपड़ी भी पराए हाथों बिक गई। यही सोचते-सोचते जब सिर उठाया तो नवासी दर्जिन के मकान के सामने पहुँच गया था। उसने जंज़ीर हिलाने के लिए हाथ उठाया तो ऐसा मालूम हुआ कि हाथ भारी पड़ गया है। खैर जंज़ीर खटखटाई। नवासी, जो वहाँ पास बैठी कुछ सोच रही थी, दरवाज़े पर आई और हमीद को पहचान गई। उसने न कुछ कहा न सुना, चिल्लाती हुई सीधी अंदर गई – "हमीद की माँ, हमीद की माँ, हमीद आ गया।"

हमीद की माँ से कोई साल-भर से उठा-बैठा भी मुश्किल से जाता था। मगर यह ख़बर सुनकर न जाने कहाँ की ताकत आ गई कि झट चारपाई से कूदकर दरवाज़े की ओर दौड़ी, हमीद को लिपटा लिया और रोने लगी। हमीद की माँ के बदन में बस हड्डियाँ-ही-हड्डियाँ रह गई थीं। न जाने कमज़ोरी से, न जाने मुहब्बत की ज्यादती से, सारे बदन में कँपकँपी थी। कई मिनट तक यह हाल रहा, न माँ ने कुछ कहा-न बेटे ने।



आखिर इस चुप्पी को माँ ने ही तोड़ा और कहा – "बेटा काले कोसों से आया है – पानी में सराबोर। ज़रा बैठ जा तो चाय बना लाऊँ।" हमीद की ज़बान से इसके जवाब में यह निकला – "अम्मा, तुमने घर बेच डाला, मुझे ख़बर तो की होती।" अम्माँ ने कहा – "बेटा, ख़बर करने से क्या फायदा होता? तुझे और फिक्र क्या कम हैं? और यह बेचारी नवासी, अल्लाह भला करे, बहुत ख्याल करती है। मुझे किसी तरह की तकलीफ नहीं। बेटा, तू आ गया, मेरी तो ज़िंदगी हो गई।"

हमीद ने अब ज़रा नज़र उठाकर मकान को देखा तो सामने एक छोटी-सी कोठरी थी। हमीद ने माँ से पूछा – "अम्माँ, क्या तुम यहीं सोती हो?"

माँ ने कहा – "नहीं बेटा, मैं उधर की दूसरी कोठरी में रहती हूँ। यहाँ तो नवासी सोती है, जो तुम्हें खत लिखा करती है।"

"अम्माँ, क्या तुम अब भी कुछ काम करती हो? अब तो तुम्हारे हाथ थक जाते होंगे।"

"नहीं बेटा, हाथ तो अभी तक काम देते हैं। मगर कोई डेढ़ साल से आँखें बेकार हैं, निगाह नहीं जमती।"

हमीद चिल्लाया – "आँखें? अम्माँ, तो क्या तुम मुझे भी नहीं देख सकतीं?"

माँ ने हमीद के सिर पर हाथ फेरा, फिर गालों पर, उसके सिर को छाती से लगाया। मुँह पर कुछ मुसकराहट-सी आई और कहा – "बेटा, तुझे तो देख सकती हूँ, अल्लाह का शुक्र है। सूरज निकलता है, उसे भी देख सकती हूँ, घर भी देख लेती हूँ, मगर और कुछ दिखाई नहीं देता। हाँ बेटा, तेरा सबसे छोटा नन्हा अब कितने दिनों का हुआ?"

"अम्माँ, तुम्हारी दुआ से अब डेढ़ बरस का है।" "अच्छा तो यह कुरता-टोपी उसके बिलकुल ठीक होगा।" यह कहकर माँ ने एक मैली-सी गठरी खोली और उसमें से टटोलकर एक रेशमी कुरता निकाला और एक लाल खूबसूरत गोल टोपी, जिस पर सच्ची किनारी टँकी हुई थी। "अम्माँ, क्या यह तुमने नन्हें मजीद के लिए सिया है?" – हमीद ने पूछा और आँखें ज़रा नम हो गई थीं, हाथ से उन्हें पोंछा।

"नहीं बेटा" – माँ ने कहा – "यह सिए तो थे मैंने तेरी सलमा के लिए, मगर तुम आए ही नहीं और वह बेचारी चल बसी।" सारी बातचीत में शिकायत का यही एक लफ़्ज था और बस। हमीद माँ की चारपाई पर बैठ गया और न जाने किन ख्यालों में गुम हो गया। कोई आठ बजे हमीद की माँ ने आकर उसके कँधे पर हाथ रखा और कहा – "बेटा, आज तो तू मेरे साथ रोटी खाएगा।"

हमीद, जो सो गया था, चौंक पड़ा और बोला – "अम्माँ, और नहीं तो क्या?" खाना देखकर हमीद हैरत में रह गया। कबाब थे, कलेजी थी, पराठे थे, अंडे थे, माश की दाल थी, मऊ का सिरका था, आम की चटनी थी, एक प्याले में दूध था, एक तश्तरी में मलाई और एक रकाबी में कटे हुए कलमी आम। हमीद हैरत में था कि इस गरीबी में यह सब सामान कहाँ से आया। यह सोचता जाता और निवाला मुँह में देता जाता, मगर मुँह में निवाला पहुँचकर ऐसा मालूम होता कि निवाला कुछ बढ़ गया है और मुँह चलाने में दिक्कत होती है।

खाना खाकर फिर हमीद माँ की चारपाई पर बैठ गया। हमीद की माँ ने करीब आकर और सिर पर हाथ रखकर कहा – "बेटा, बुरा न मानो तो एक बात कहूँ।"

हमीद का मुँह पीला पड़ गया। उसे ख्याल हुआ कि शायद माँ यह कहेगी – "मुझे इस पराए घर से निकालकर अपने साथ ले चल या कोई दूसरा घर ले दे।"

हमीद ने कहा, "अम्माँ, ज़रूर कहो।"

माँ ने कहा, "बेटा, तू शहर का रहने वाला है। मदरसे में नौकर है। मैं पराए घर पड़ी हूँ, तेरी क्या खातिर करूँ। नसीबन को भेजकर खाँ साहब की कोठी में तेरे लिए एक कमरा साफ़ करा दिया है और खाट डलवा दी है, मगर जी चाहता है कि तू मेरे साथ रहता। कहते हुए डरती हूँ। क्या तू मेरा यह अरमान पूरा कर सकता है? मैंने इसी उम्मीद पर नसीबन के यहाँ से यह चारपाई भी मँगा ली है।" माँ की यह बात सुनकर हमीद का जी भर आया। मुँह से आवाज़ न निकली। घबराहट में इधर-उधर देखा और बोला,

"अम्माँ, यह भी कोई बात है। मैं तुम्हारे पास न रहूँगा तो कहाँ जाऊँगा।" माँ ने हमीद के माथे को चूमा और झट नसीबन से यह चारपाई अपनी कोठरी में डलवा दी। फिर एक गठरी खोली। उसमें से एक सफ़ेद चादर निकाली, जिस पर बड़ी खूबसूरत बेल लगी थी। दो तकिए निकाले, साफ़-साफ़ गिलाफ़, चारों तरफ झालर। ओढ़ने के लिए बारीक चादर। तकियों पर कोई अच्छा-सा इत्र मला। फिर बेटे की तरफ बढ़ी और कहा, "बेटा, अब तुम सो जाओ। बहुत थक गए होगे।"

हमीद यह सब तमाशा देख रहा था और हैरत में था कि अल्लाह यह सब कहाँ से आया। आखिर न रहा गया, उसने पूछ ही लिया, "अम्माँ, यह खाना और यह सारा सामान कहाँ से आया?"

अम्माँ बोली – "बेटा, अब यह गाँव भी शहर ही है। अल्लाह रखे, सब चीज़ मिलती हैं और खाना, सो आज तो बकरीद का दिन था। गोश्त पड़ोसियों के घर से आया था, और चीज़ें भी इधर-उधर से कर लीं।"

"मगर अम्माँ, यह चादर, यह गिलाफ़, ये जूतियाँ, यह सारा सामान, इत्र, मुरादाबादी उगालदान, इसके लिए रुपया कहाँ से आया?"

माँ की अंधी आँखों से पानी की दो-चार बूँदें टपकीं और उसने ऐसी आवाज़ में, जिसमें न जाने मलामत का ज़्यादा असर था या मुहब्बत का, कहा – "बेटा तू.... और यह पूछता है, एक-एक दिन तेरे ही इंतजार में कटा है। सात बरस में यह तैयारी कर पाई हूँ बेटा, सात बरस में।"

माँ की इस बात को सुनकर कोठरी में खामोशी छा गई। फिर रात-भर किसी ने किसी से कुछ बात न की।

– ज़ाकिर हुसैन

प्रश्न-अभ्यास

1. पितृ-विहीन और गरीब हमीद का दिल्ली में अंग्रेज़ी पढ़ने का शौक कैसे पूरा हो सका?
2. भटियारे के यहाँ रोटी खाने का प्रस्ताव नसरुल्लाह खाँ ने क्यों स्वीकार नहीं किया?
3. सात वर्ष तक हमीद अपनी माँ से मिलने मुर्शिदाबाद क्यों नहीं जा सका?
4. जुनकिया धोबिन की मौत की खबर का हमीद पर क्या असर हुआ?
5. अपनी झोंपड़ी के बिकने की खबर सुनकर हमीद को सबसे अधिक धक्का किस बात से लगा?
6. गरीब माँ द्वारा पौत्र के लिए रेशमी कुरता और टोपी तथा बेटे के लिए बढ़िया भोजन और स्वच्छ बिस्तर का इंतजाम करने के पीछे माँ की क्या भावना थी?
7. हमीद के प्रति माँ की ममता किन-किन बातों से प्रकट होती है?

5. दानी कुमणन

दो हज़ार साल पहले तमिलनाडु में मुदिरम् नाम का एक पहाड़ी प्रदेश था। वहाँ कुमणन नाम का राजा शासन करता था। वह बड़ा दानी, प्रजावत्सल और न्यायपालक था। वह विद्वानों, कवियों, कलाकारों का आदर करता था। उसके मन में दीन-दुखी लोगों के प्रति सहानुभूति थी। लोग मदद माँगने उसके पास आया करते थे। वह याचकों की माँग आदरपूर्वक पूरी करता था।

एक बार पड़ोसी राज्य में अकाल पड़ा। वहाँ से कई परिवार कुमणन के पास राहत पाने के लिए आए। सब-के-सब भूखे-प्यासे और थके-माँदे थे। बाल-बच्चे भूख से बिलख रहे थे। बूढ़े लोगों की हालत और खराब थी। कुमणन ने तुरंत अपने महल में ही बढ़िया भोजन बनवाया। अकाल पीड़ित परिवारों को भी राजपरिवार के साथ बिठाकर भोजन खिलाया, इसी प्रकार बहुत दिनों तक राजमहल में रखकर उनका पालन-पोषण किया।

तमिलनाडु के कोने-कोने से कवि, पंडित, कलाकार और साधु-संत कुमणन के पास आते, आदर-सत्कार पाते और भेंट-उपहार लेकर लौट जाते थे। उस ज़माने के कवि, विद्वान, कलाकार बड़े स्वाभिमानी और सच्चे समाजसेवी थे। वे राजा-प्रजा के हितैषी और मार्गदर्शक भी थे। वे लोग अपने लिए धन-संपत्ति जमा नहीं करते थे। उनका पालन-पोषण राजा की ओर से आदर के साथ हुआ करता था।

राजा कुमणन के ऐसे ही दो हितैषी थे। महापंडित चात्तनार और महाकवि चित्रनार। जब भी उनको किसी चीज की ज़रुरत पड़ती, कुमणन के पास चले आते और उनसे माँगकर ले जाते। कुमणन उन दोनों विद्वानों का बड़ा आदर करता था। उन्होंने कुमणन

की दान-शीलता और उदारता की प्रशंसा में कई सुंदर गीत गाए। घुमंतू चारण-भाट गायकों ने उन कीर्तिगानों को गाते हुए तमिल प्रदेश के कोने-कोने में कुमणन का यश फैलाया।

एक दिन महाकवि चित्रनार कुमणन से थोड़ा धन माँगने के लिए आए। उस समय कुमणन ज़रूरी राजकाज में लगे हुए थे। इसलिए महाकवि का संदेश पाते ही राजा ने अपने मंत्री के हाथ कुछ धन देकर उनके पास भेज दिया।

महाकवि को यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा। उन्होंने मंत्री के दिए धन को स्वीकार नहीं किया। सीधे राजा कुमणन के पास चले आए और बोले, "मेरे प्रिय नरेश! मैं तुमसे मिलने और तुम्हारे हाथों से उपहार पाने आया हूँ। मुझे मामूली याचक न समझ बैठना। तुम दूसरे के हाथों विपुल संपत्ति भी भेज दो, मैं लूँगा नहीं, तुम स्नेहपूर्वक रत्ती-भर वस्तु भी दे दो, वही मेरे लिए काफ़ी होगी, मैं उसे सहर्ष स्वीकार कर लूँगा।"

कुमणन महाकवि की झिड़की सुनकर लज्जित हुआ। उसने अपनी गलती के लिए महाकवि से क्षमा माँगी। उसको इसी महाकवि की एक पुरानी बात याद हो आई, ये एक बार पड़ोसी प्रदेश के राजा वेलियान के महल में गए थे। उस समय वह आराम कर रहा था। महाकवि के आने का समाचार मिला। उनका स्वागत करने वह स्वयं नहीं आया, अपने भाई से बोला, "तुम उनका स्वागत-सत्कार करो। थोड़ा धन देकर उनको विदा करके आओ।"

महाकवि चित्रनार ने देखा कि राजा वेलियान स्वयं न आकर अपने भाई को भेज रहा है। वे तुरंत वहाँ से उठकर चले आए और कुमणन के पास गए। कुमणन ने उनका आदर के साथ स्वागत किया। महाकवि ने कुमणन की प्रशंसा में सुंदर गीत गाए। कुमणन ने बहुत हर्षित होकर उनको एक सजा-धजा हाथी और धन-राशि देकर विदा किया।

महाकवि चित्रनार उस हाथी को लेकर वेलियान के महल में गए और उनसे कहा, "मेरे राजा! यह लो मेरी ओर से यह उपहार। यदि तुम्हारे पास मेरा सम्मान करने के लिए

फ़ुरसत नहीं है, तो क्या हुआ? मेरे पास तुम-जैसे राजाओं का आदर करने के लिए समय है, सामर्थ्य भी है।"

राजा वेलियान लज्जित हुआ। यह महाकवि के चरणों पर गिरकर क्षमा माँगने लगा।

कुमणन को यह घटना याद आई। उसने निश्चय कर लिया कि आगे से ऐसी गलती मुझसे नहीं होनी चाहिए।

कुमणन के दूसरे मित्र थे महापंडित चात्तनार। वे भी समय-समय पर आकर राजा से भेंट-उपहार लिया करते थे। वे उदार स्वभाव के थे, उनको जो कुछ मिलता, उसे अपने गरीब रिश्तेदारों के साथ बाँट लेते थे। थोड़े समय के बाद महापंडित चात्तनार के पास कुछ नहीं बचा। अपना परिवार चलाना भी मुश्किल हो गया। भुखमरी की नौबत आ गई। तब उन्हें दानी राजा कुमणन की याद आई। वे उनसे मिलने मुदिरम् नगर में आए, किंतु वहाँ स्थिति एकदम बदली हुई थी।

कुमणन का एक सौतेला छोटा भाई था – इलंकुमणन। वह सत्तालोभी और चालाक आदमी था। उनसे विद्रोह करके राजगद्दी हथिया ली और अपने बड़े भाई को राज्य से ही अलग कर दिया।

शांतिप्रिय कुमणन अचानक हुए विद्रोह को दबा नहीं सका। उस समय की लड़ाई में वह हार गया। राजपाट छोड़कर उसी पहाड़ी प्रदेश के जंगल में कुटिया बनाकर अपने परिवार के साथ रहने लगा। फिर भी उसी का नाम और यश उस प्रांत में ऊँचा था।

नए शासक इलंकुमणन ने सोचा, "बड़े भाई के रहते मुझे कोई नहीं मानेगा और मेरी शासन-सत्ता भी स्थिर नहीं रह सकती। इसलिए उनको इस दुनिया से ही अलग कर देना चाहिए.....।"

बस, दूसरे ही दिन इलंकुमणन ने राज्यभर में ढिंढोरा पिटवाया कि जो व्यक्ति मेरे पराजित भाई का सिर काटकर लाएगा, उसे एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ भेंट दी जाएँगी।

इस घोषणा को सुनते ही लोगों में खलबली मच गई। सभी प्रजाजन नए शासक इलंकुमणन से घृणा करने लगे और उसकी निंदा की। इस नीचतापूर्ण घोषणा की सभी ने अवहेलना कर दी।

महापंडित चात्तनार अपने दानी मित्र कुमणन की दुर्दशा जानकर बहुत दुखी हुए। वे उनको खोजते हुए जंगल में गए। कुमणन से मुलाकात हुई। दोनों स्नेह से गले मिलकर रो पड़े। भाग्य का यह कैसा क्रूर खेल है। लाचारी का एहसास दोनों को अधिक सताने लगा।

कुमणन भाँप गया कि हितैषी मित्र चात्तनार तंग हालत में है और मुझसे मदद लेने आए हैं, "मैं कितना अभागा हूँ। घर आए आदरणीय अतिथि का सत्कार करने और इनकी मदद करने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है। ऐसे निकृष्ट जीवन से लाभ ही क्या है?"

कुमणन ने निश्चय किया कि वे मित्र महापंडित को खाली हाथ नहीं जाने देंगे। उसने चात्तनार से निवेदन किया, "मेरे आदरणीय बंधु, आप मेरी यह तलवार लीजिए। इससे मेरा सिर



काटकर ले.जाइए और मेरे भाई को सौंप दीजिए। वह आपको एक हज़ार मुद्राएँ भेंट करेगा। उन धनराशि से आप पहले की तरह अपने परिवार तथा रिश्तेदारों का पालन-पोषण करें।"

दानी कुमणन की यह बात सुनते ही चात्तनार सिहर उठे, बिलख-बिलखकर रो पड़े। वे अपनी तंगी और तकलीफ़ भूल गए। वे सोचने लगे, यह कुमणन कितना महान दानवीर है। ऐसे त्यागी पुरुष की यह दुर्दशा नहीं होनी चाहिए। इस विपत्ति से इसको उबारना मेरा कर्तव्य है। अब मैं यही करूँगा...।

चात्तनार ने कुमणन से तलवार ली और कहा, "मेरे प्रिय मित्र! तुम मेरे लौट आने तक धीरज धरो। मैं वापस आकर तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा।"

चात्तनार जंगल से लौटकर नगर के प्रसिद्ध शिल्पी के यहाँ पहुँचे। उन्होंने उस शिल्पी से कुमणन का कटा हुआ सिर जैसा मोम का एक सिर बनवाया। वे उस सिर को कपड़े से ढककर राजमहल में ले गए।

इलंकुमणन राजगद्दी पर बैठा हुआ था। सामने गणमान्य दरबारी लोग थे। महापंडित चात्तनार ने कटे हुए सिर को राजा के सामने रखा और कहा, "नए शासक! यह लो, तुम्हारी घोषणा की भेंट। अब तो तुम्हारा दिल ठंडा हुआ न? लेकिन, हाँ यह न भूलो कि इस अत्याचार से तुम्हारा जीवन और शासन संकट से मुक्त हो गया।"

खून से सना और कटा हुआ सिर देखते ही इलंकुमणन भौचक्का रह गया। उसको विश्वास हो चुका था कि पूरे प्रदेश में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं मिलेगा जो धन के लालच में कुमणन



की हत्या करने को तैयार हो जाए। ऐसी हालत में इस अनहोनी घटना से वह विचलित हो उठा। उसकी मानवता जाग उठी। शोक और पश्चाताप की आग में वह झुलसने लगा। लज्जा के

कारण उसका सिर झुक गया। उसने दबे स्वर में कहा, "महापंडित! आपने यह क्या कर दिया? मैं सत्ता के मोह में पड़कर भाईचारा, सद्भाव और शील सब भूल बैठा। आप तो बड़े विद्वान हैं और मेरे बड़े भाई के मित्र भी हैं। आपके हाथों यह पाप कैसे हुआ?"

चात्तनार इलंकुमणन के हृदय-परिवर्तन से आश्वस्त हुए। वे शांत भाव से बोले, "युवराज! तुमसे इसी हृदय-परिवर्तन की आशा मुझे थी। इसीलिए मैंने यह उपाय किया है। तुम्हारे बड़ी भाई दानी कुमणन जंगल में भले-चंगे हैं। यह उनका नकली सिर है जो मोम का बना है। अब तो तुम्हें अपने किए पाप का प्रायश्चित करना है, करोगे?"

इलंकुमणन ने हाथ जोड़कर चात्तनार से क्षमा माँगी और प्रार्थना की, "महापंडित ! आज्ञा दीजिए। मैं अपने प्राण तक देने को तैयार हूँ।"

चात्तनार ने उसे समझाया, "युवराज! तुम बड़े भाई को आदर के साथ बुला लाओ। उनको यह राजगद्दी सौंप दो। इस प्रांत के पुराने राजा लोग बड़े दानी, नीतिपालक और विद्याप्रेमी थे। तुम्हारे पूर्वजों ने अच्छे-भले काम कर बड़ी ख्याति पाई है। युवराज! तुम भी अपने पूर्वजों की तरह अच्छे काम करके कीर्ति पाओ।"

युवराज इलंकुमणन ने चात्तनार की सलाह मानी। वह बड़े भाई को आदर के साथ ले आया और उनको राजगद्दी सौंपकर स्वयं युवराज बना। महापंडित चात्तनार अपने प्रयास की सफलता पर फूले न समाए। वे दोनों भाईयों से भेंट-उपहार पाकर आनंद के साथ घर लौटे।

– र. शौरिराजन

प्रश्न-अभ्यास

1. 'कुमणन बड़ा दानशील और जरूरतमंदों की सहायता करने वाला राजा था।' उदाहरण देकर इस कथन की पुष्टि कीजिए।
2. महाकवि चित्रनार के स्वाभिमान को दर्शाने वाली किसी एक घटना का उल्लेख कीजिए।

3. राजा कुमणन से चित्रनार के स्वागत में क्या गलती हुई?
4. राजा कुमणन को अपना राजपाट छोड़कर जंगल में जाकर क्यों रहना पड़ा?
5. इलंकुमणन ने अपने भाई का सिर काटकर लाने के लिए राज्यभर में ढिंढोरा क्यों पिटवाया?
6. जंगल में मुलाकात करने के लिए आए महापंडित चात्तनार को देखकर राजा कुमणन क्यों दुखी हुआ?
7. महापंडित चात्तनार इलंकुमणन का हृदय-परिवर्तन करने में किस प्रकार सफल हुए?

6. चार सिक्के

बहुत पुरानी बात है। किसी गाँव में एक विद्वान ब्राह्मण रहता था। उसका अधिकांश समय पूजा-पाठ में बीतता था। उसकी एक आदत बहुत अच्छी थी, वह जरूरत से ज्यादा धन कभी नहीं चाहता था, लेकिन उसकी पत्नी लालची थी और धनवान होना चाहती थी।

वहाँ का राजा बहुत ही दानी और परोपकारी था। वह ब्राह्मणों का बहुत सम्मान करता था। कोई भी ब्राह्मण उसके दरवाजे से खाली हाथ नहीं लौटता था।

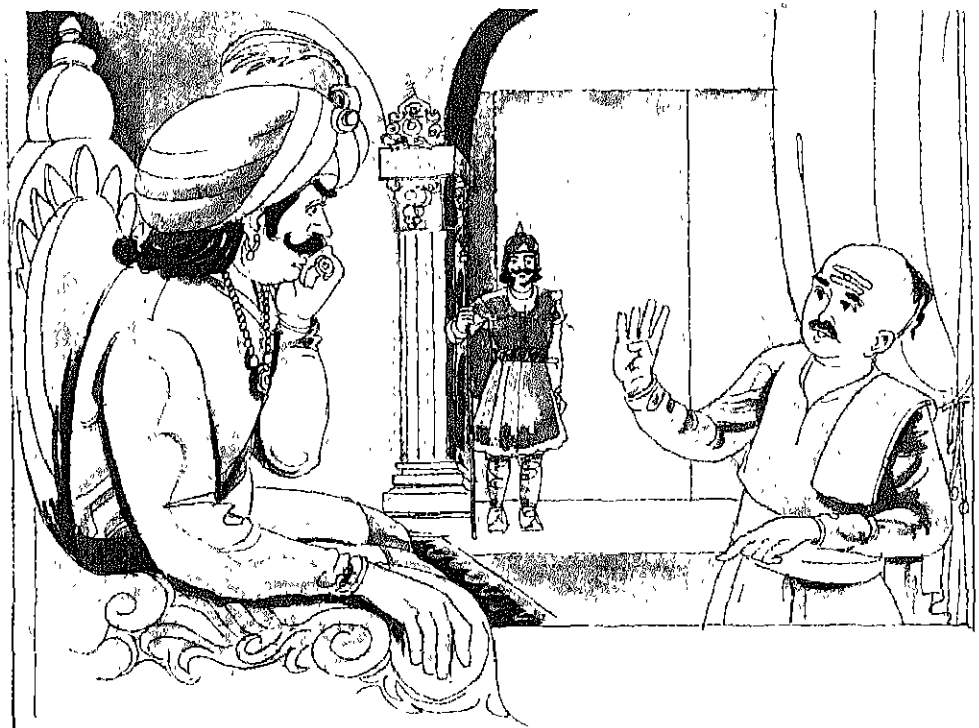
एक दिन ब्राह्मणी ने अपने पति से कहा, "सब राजा के पास जाकर धन लेकर आते हैं। तुम्हारे मित्र धनवान हो गए हैं। एक तुम हो, न तो राजा के पास जाते हो और न ही धन कमाने के लिए कुछ करते हो।"

वह बोला, "मैं राजा के पास धन माँगने नहीं जाऊँगा। राजा का कोष प्रजा का है। वह उसके खून-पसीने की, मेहनत की कमाई नहीं है।"

"मुझे कुछ नहीं पता। तुम राजा के पास जाओ। उससे कुछ लेकर ही आओ।"

ब्राह्मण बहुत मना करता रहा, लेकिन उसने एक न सुनी। अगले दिन वह राजा के दरबार में पहुँचा। संयोगवश राजा शिकार खेलने गया था। ब्राह्मण खाली हाथ घर लौट आया। दूसरे दिन पत्नी के कहने पर राजा के पास फिर गया। उस दिन भी राजा शिकार खेलने गया हुआ था। ब्राह्मण जैसे ही वापस जाने लगा, सामने से राजा आ गया। राजा आदर से बोला, "महाराज आप पधारे हैं, बैठिए। आप कल भी खाली हाथ चले गए। मुझे बहुत दु:ख है। कहिए क्या सेवा करूँ।"

ब्राह्मण बोला, "राजन, और कुछ नहीं, मुझे तो केवल आपकी मेहनत की कमाई के चार सिक्के चाहिएं।"



राजा सोच में पड़ गया, "मेरे कोष में अपार धन भरा पड़ा है। लेकिन मेरी मेहनत का तो एक भी सिक्का नहीं।" वह हाथ जोड़कर बोला, "मुझे दो दिन का समय दें। आपको अपनी मेहनत के ही सिक्के दूँगा।"

उस दिन भी ब्राह्मण खाली हाथ घर लौटा। पत्नी बोली, "खाली हाथ ही लौट आए? तुमसे कुछ नहीं होगा।"

ब्राह्मण बोला, "मैंने राजा से जो माँगा, वह राजा ने दो दिन बाद देने को कहा है।" सुनकर उसकी पत्नी खुश हो गई। उसने सोचा, "लगता है, मेरे पति बहुत होशियार हैं। उन्होंने जितना धन माँगा होगा, संभव है, उतना कोष में उस समय नहीं होगा, इसलिए राजा ने दो दिन का समय दिया है।"

इधर राजा सोच में पड़ गया। कुछ निश्चय करके उठा। अपने राजसी वस्त्र उतार दिए। धोती-कुर्ता पहनकर जाने लगा। यह देखकर रानी बोली, "महाराज, आप इस तरह कहाँ जा रहे हैं?"

राजा ने सारी बात बता दी। सुनकर रानी मुसकराई और बोली, "ठहरिए महाराज, मैं अभी आती हूँ।" यह कहकर रानी रनिवास में चली गई। वापस आई तो राजा हैरान रह गया। रानी ने साधारण सूती धोती पहन ली थी, वह अपने जेवर भी उतार आई थी। राजा-रानी काम की तलाश में निकल पड़े। जहाँ भी काम माँगते, "काम नहीं है" कहकर मना कर दिया जाता। राजा बहुत हैरान था।

शाम हो गई। दोनों दिन-भर के भूखे-प्यासे, खाली हाथ लौट आए। कहीं काम नहीं मिला। राजा निराश हो गया। रानी बोली, "महाराज, निराश क्यों होते हैं? अभी तो एक दिन का समय और है। कल काम ढूँढेंगे। कहीं-न-कहीं काम अवश्य मिल जाएगा। दूसरे दिन सुबह दोनों फिर काम की तलाश में निकल पड़े। वे दोनों मजदूरों की बस्ती में चले जा रहे थे। उन्होंने देखा, बच्चे अधनंगे सूखी रोटियाँ चबा रहे हैं। आदमी-औरतें काम करने में जुटे हैं। कुछ देर यह सब देखने के बाद रानी धीरे-से उन औरतों के पास गई, बोली "क्या हमें भी काम मिल सकता है?"

एक औरत ने ठेकेदार की तरफ इशारा किया। राजा-रानी उसके पास गए। उस आदमी ने पत्थर ढोने का काम राजा को दे दिया। मगर रानी को कोई काम नहीं मिला। रानी मज़दूरों के बच्चों के साथ खेलने लगी। राजा टोकरे में पत्थर भरकर उठाने लगा। एक बार टोकरा उठा न पाया। वह बहुत शर्मिंदा हुआ। उसे देख औरतें मुँह में कपड़ा ठूँस कर हँसने लगीं। ठेकेदार यह सब देख रहा था। वह राजा की पीठ पर हाथ रखकर बोला, "तुम ज़रूर किसी ऊँचे खानदान के लगते हो। किस्मत के मारे हो, जो यहाँ काम करने चले आए। यह काम तुम्हारे लायक नहीं है। ये लो दो सिक्के जाकर अपना और अपनी पत्नी का पेट भरो।"

राजा शर्मिंदा था। चुपचाप दो सिक्के लेकर रानी के साथ आगे चल दिया। थोड़ी दूर जाने पर उन्हें लहलहाते खेत मिले। वहाँ कुछ औरतें काम कर रही थी। रानी बोली, "महाराज, मैं वहाँ काम ढूँढ़ती हूँ। ज़रूर काम मिल जाएगा।"

रानी उन औरतों के पास गई और बोली, "हमें कहीं काम नहीं मिला। मुझे कुछ काम दे दो।"

औरतों को उस पर दया आ गई। उन्होंने रानी को काम दे दिया। रानी खेतों की कटाई करने लगी। कुछ ही देर में पसीने से तर-ब-तर हो गई। जोर-जोर से हाँफने लगी। अब राजा से न रहा गया, वह रानी की मदद करने दौड़ पड़े। किसी तरह दोनों ने शाम तक मजदूरी के चार सिक्के कमा लिए और खुशी-खुशी अपने महल की ओर चल पड़े।

रानी बोली, "देखा, महाराज! ये लोग कितनी मेहनत करते हैं, तब कहीं जाकर इन्हें एक वक्त का खाना नसीब होता है।"

राजा मुस्कराने लगा। बोला, "अब हमें भी इसी तरह मेहनत करनी चाहिए।"

वे महल में पहुँचे तो ब्राह्मण को बैठे पाया। ब्राह्मण ने राजा-रानी को इस वेश में देखा तो चकित हुआ। वह अपने आप को धिक्कारते हुए बोला, "धन्य है यह राजा, जिसने अपने वचन की लाज रखने के लिए मज़दूरी तक की।"



राजा-रानी ने ब्राह्मण को देखा। खुशी-खुशी उसके पास आए। बोले, "यह लो महाराज हमारी मेहनत की कमाई।" आप मेहनत की कमाई न माँगते तो, हमें प्रजा की सही दशा कैसे पता चलती? हम अब जान गए हैं कि मेहनत की कमाई किसे कहते हैं। हम सबको मेहनत की कमाई की रोटी ही खानी चाहिए।"

ब्राह्मण ने सिक्के लिए। घर आकर अपनी पत्नी के हाथों पर सिक्के रखते हुए बोला, "लो, राजा का धन।"

पत्नी गुस्से से बोली, "क्या तुमने राजा से इतना ही धन माँगा था, जो दो दिन बाद लेकर चले आ रहे हो।"

ब्राह्मण ने अपनी पत्नी को सारी बात बताई। सुनकर पत्नी की आँखें भर आईं। उसने सिक्के सँभालकर रख लिए। बोली, "अब हम भी मेहनत की कमाई से ही अपना पेट भरेंगे।"

– मधुमालती जैन

प्रश्न-अभ्यास

1. ब्राह्मण ने राजा से चार सिक्के ही क्यों माँगे?
2. ब्राह्मण ने धन माँगते समय राजा के सामने क्या शर्त रखी?
3. राजा ब्राह्मण को तुरंत धन क्यों न दे सका?
4. काम ढूँढने पर निकले राजा-रानी को क्या-क्या अनुभव हुए?
5. कोष में अपार धन होने पर भी राजा को चार सिक्के कमा लेने पर प्रसन्नता क्यों हुई?
6. इस कहानी में किस-किस का हृदय परिवर्तन हुआ और कैसे-कैसे?

7. विशेष पुरस्कार

"उफ़, कितना दुष्ट है यह लड़का! इसे पीटकर सीधा किए बगैर नहीं चलेगा। लड़कों के साथ इसके लड़ने-झगड़ने की कई वारदातें मैं सुन चुका हूँ" – हैडमास्टर ने अपने आपसे कहा और चौकीदार मोहन को ऊँची आवाज़ में पुकारा, "मोहन, मोहन!"

हैडमास्टर के गरजने की आवाज़ से ही मोहन समझ गया कि उनका पारा चढ़ा हुआ है। तीन छलाँगों में वह कमरे से बाहर निकल आया और हैडमास्टर के पास पहुँचकर उसने सहमते हुए पूछा, "जी, सर!"

"तुरंत जाकर पाँचवीं कक्षा के तपन को बुला ला" – हैडमास्टर ने आदेश दिया।

मोहन एकदम कमरे से निकल गया।

यहाँ तपन का ज़रा परिचय दे दिया जाए। तपन पदुमनि गाँव के किरानी का मँझला लड़का था। छरहरे कद का होने पर भी बड़ा बलिष्ठ। रंग साँवला, बड़ी-बड़ी आँखें, फुरतीला, साथ ही पढ़ने-लिखने में भी तेज। मगर क्या घर, क्या बाहर, उसके उपद्रवों की कोई सीमा नहीं। बेकार की बातों में उलझने में माहिर। घर के लोग भी उससे आतंकित रहते। वह पहले या बिना कारण किसी को परेशान नहीं करता था, किसी से झगड़ा-टंटा नहीं करता था। पर अगर कोई उससे उलझे या चिढ़ा दे तो बस, फिर उसकी खैर नहीं। हमउम्र लड़कों का तो वह सरदार ही था। किसी को कोई बेवजह मारे या गाली दे दे तो उसे बता देना ही काफी था। उसे वह बिलकुल ठीक करके ही छोड़ता। यूँ कहा जाए तो वह सही मायने में बेसहारों का सहारा था। इसी कारण उसके साथ लड़के जहाँ उसे पसंद करते, वहीं उससे डरते भी थे।

गाँव के प्राथमिक स्कूल की आखिरी परीक्षा पास करने के बाद वह पंद्रह मील दूर अपने मामा के यहाँ चला गया था और वहाँ के हाई स्कूल में सिर्फ सालभर पढ़ने के बाद फिर घर लौट आया और गाँव से डेढ़ मील दूर के ज्ञानपीठ हाई स्कूल में भरती हो गया।

इस हाई स्कूल में उसे आए अभी सिर्फ एक माह हुआ था। इसी बीच उसकी शिकायतें आने लगीं। पदुमनि गाँव के ही व्यापारी हरेन महाजन ने तपन के खिलाफ हैडमास्टर से फरियाद की। हैडमास्टर को दी गई अपनी अर्जी में उसने लिखा था – कल बदमाश तपन ने लड़कों के झुंड के साथ बिना कारण उसकी दुकान पर पत्थर बरसाए और उसके उकसाने पर दूसरे लड़कों ने दुकान में घुसकर गड़बड़ी की। इसलिए हैडमास्टर साहब उसका उचित फैसला कर दें।

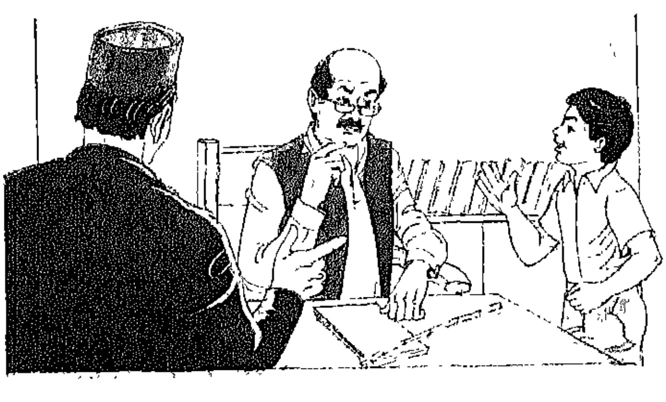
चौकीदार के साथ तपन आया और डरता हुआ हैडमास्टर की ओर नजर डाल, सिर झुकाकर खड़ा हो गया। हैडमास्टर ने हाथ में पकड़ी हुई बेंत हिलाते हुए कहा, "ए लड़के, तेरा नाम तपन है?"

"जी सर!" तपन ने विनम्रता से जवाब दिया।

"हूँ! तू इस सज्जन को पहचानता है?" – पास खड़े हरेन महाजन की ओर उँगली का इशारा करते हुए हैडमास्टर ने तपन से पूछा।

"जी, इनका घर तो हमारे गाँव में ही है" – तपन ने पहले जैसे विनम्र भाव से ही जवाब दिया।

"हूँ! ठीक है। कल शाम को लड़कों की टोली ले जाकर तूने इनकी दुकान पर पत्थर क्यों फेंके थे? सच-सच बता। नहीं तो बेंत मार-मारकर तेरी चमड़ी उधेड़ दूँगा" – हैडमास्टर ने आँखें तरेर कर पूछा।



"जी सर, बंटू आदि के साथ इनकी दुकान पर मैंने पत्थर फेंके थे, यह सच है" तपन बोला।

"क्यों फेंके थे पत्थर? बदमाश कहीं का, बता?" – हैडमास्टर ने डाँटा।

"सर, चीज़ें बेचते समय यह आदमी ग्राहकों को ठगा करता है। कीमत भी ज्यादा लेता है, तौल में भी कम देता है। इसने कागज के ऐसे थैले बनवाए हैं जिनकी पेंदी में मोटी-मोटी दफ़्ती लगी रहती है। ऐसे थैले बनाने के लिए मोटी-मोटी दफ़्तियाँ मँगवा रखी हैं सर, परसों सवेरे इसके यहाँ से एक किलो दाल ली थी। घर लाकर तौली तो सिर्फ़ आठ सौ ग्राम दाल निकली। थैले को फाड़कर उसकी दफ़्ती तौलने पर पाया कि यह पचास ग्राम की थी। शेष डेढ़ सौ ग्राम इसने तौल में कम दिया था। गाँव के सभी लोग इसके बारे में कहा-सुना करते हैं। मैंने जब कल शाम को इससे दाल कम देने की शिकायत की तो इसने मुझे उलटे गालियाँ देकर दुकान से भगा दिया था सर! इसी कारण मैंने लड़कों को साथ लेकर इसकी दुकान पर पत्थर फेंके थे" – तपन ने कहा।

हैडमास्टर ने हरेन महाजन के चेहरे पर नज़र डाली। उसका चेहरा स्याह पड़ गया था। हैडमास्टर ने कुछ सोचा। फिर तपन की ओर देखकर बोले, "जो भी हो, तूने यह काम अच्छा नहीं किया, किसी के यहाँ जाकर यों उपद्रव करना बड़ी बुरी बात है। अगर महाजन ने बुरा काम किया है तो उसका फ़ैसला सरकार या और लोग करेंगे। तुझे क्या पड़ी थी? आ, हाथ फैला।"

एक-एक कर पाँच बेंत खाकर तपन कुछ देर के बाद कमरे से निकल गया। उसकी कक्षा के लड़के उसको देखकर व्यंग्य करते हुए हँस रहे थे। दो-एक ने आवाज़ें भी कसीं।

कुछ दिन बाद एक और घटना हो गई। एक उद्दंड साँड़ के उपद्रवों के मारे वहाँ के बहुत से लोगों की नाक में दम हो गया था। कई लोगों को सींग मारकर उसने घायल कर दिया था। अगर कोई लकड़ी या डंडा लेकर आगे बढ़ता तो यह साँड़ तनकर उसकी ओर दौड़ पड़ता। साँड़ की वह रुद्र मूर्ति देखकर उसके सामने जाने की हिम्मत भला

कौन कर सकता था। साँड़ के उपद्रवों से तपन के मन में उसके प्रति एक होड़ की भावना जाग उठी थी। उसने मन-ही-मन कहा – ठहरो बच्चू, तुम्हें सीधा करके ही छोड़ूँगा।

कुछ सोच-विचार कर उस दिन विराम की घंटी में वह कहीं से एक रस्सी और एक सीटी ले आया था। चुपके से साँड़ के पास पहुँचकर मौके से न जाने कब और कैसे अचानक कूदकर उसकी पीठ पर सवार हो गया और घोड़े की भाँति साँड़ के मुँह में रस्सी की लगाम लगा दी। साँड़ पहले तो समझ ही नहीं पाया था। लेकिन जैसे ही पता चला कि उसकी पीठ पर शासन करने वाला कोई आदमी सवार है, तो उसका धीरज टूट गया। बात समझ में आते ही कूद-फाँद कर हिला-डुलाकर, दौड़-धूप कर कैसे भी हो, उसे नीचे गिरा देने की वह कोशिश करने लगा।

उधर स्कूल में पाँचवीं घंटी की पढ़ाई शुरू हो गई थी। मगर तपन का तो उधर ध्यान ही नहीं था। वह तो साँड़ को वश में करने में जुटा हुआ था। साँड़ की उछल-कूद के बावजूद तपन अपने को सँभाले हुए उसकी पीठ पर लगाम पकड़े रहा। एक बार लगाम खींचकर तपन ने साँड़ की पीठ पर दो-चार डंडे जमा दिए तो साँड़ बिलकुल मतवाला-सा हो उठा। वह स्कूल की चहारदीवारी के अंदर घुस आया और सातवीं कक्षा में घुस कर इधर-उधर दौड़ने लगा। अचानक ऐसी चिंतनीय घटना देखकर उस कक्षा के शिक्षक और छात्रों के होश-हवास गुम हो गए। भगदड़ मच गई। जिसे जिधर जगह मिली, उधर भागा। धक्कम-धक्का, ठेलम-ठेल में कौन किस पर गिरा, कोई ठिकाना न रहा। शिक्षक रजनी चहरिया भी किसी तरह दौड़ते हुए बाहर निकल कर ही बच पाए। साँड़ की कूद-फाँद से स्कूल के दरवाजे-खिड़कियों के बहुत-से शीशे टूट गए। वहाँ भी कोई चारा न पाकर साँड़ हँकड़ता हुआ बाहर दौड़ा और स्कूल के मैदान में धम्म से गिर पड़ा। तपन अपने को किसी तरह बचा पाया और कूदकर दूर जा पड़ा। साँड़ खड़ा होकर डर के मारे पीछे की ओर देखे बगैर तेज़ी से भागा...... बिलकुल हवा-सी दौड़,..... दौड़ते-दौड़ते वह स्कूल की चहारदीवारी से दूर निकल गया।

हैडमास्टर के पास तपन के खिलाफ फिर मामला आया। मामला लाने वाले थे खुद रजनी मास्टर। साँड़ के संबंध में तपन की शिकायत पाते ही हैडमास्टर आग-बबूला हो उठे। हरेन महाजन वाली और बीच-बीच में दूसरे लड़कों की छोटी-मोटी घटनाएँ याद आ जाने के कारण उनका मन और भी कड़वा हो उठा था। इस उत्पाती लड़के की करतूतों के कारण ही आज स्कूल के शिक्षक और छात्रों की ऐसी दुर्गति हुई और स्कूल का नुकसान भी हुआ। यह सोचकर हैडमास्टर ने तुरंत तपन को बुला लाने के लिए चौकीदार मोहन को भेज दिया।

क्षण भर के बाद ही मोहन के साथ तपन डरते-डरते हैडमास्टर के सामने आया। तपन को देखते ही हैडमास्टर ने दाँत पीसते हुए बेंत हिला-हिला कर कहा, "अरे बदमाश, आज तूने उस साँड़ को कक्षा में क्यों घुसा दिया था? बता, जल्दी बता, नहीं तो ..."

"सर, मैंने जान-बूझकर साँड़ को कक्षा में नहीं घुसाया। मैं उसकी पीठ पर चढ़कर उसे वश में करना चाहता था। तभी वह दौड़कर कक्षा में घुस गया था। सिर झुकाकर तपन ने जवाब दिया।"

"भला तू क्लास छोड़कर साँड़ की पीठ पर चढ़ने क्यों गया था? तुझे क्या पड़ी थी? तो ले, हाथ फैला।"

हथेली पर हैडमास्टर की बेंत की पंद्रह चोटें झेलकर तपन अपनी कक्षा में आया। घृणा और व्यंग्य की हँसी से उसकी कक्षा के लड़कों ने उसका स्वागत किया। इस घटना के बाद तपन समूचे स्कूल में एक बुरे लड़के के रूप में प्रसिद्ध हो गया।

कुछ ही देर बाद हर कक्षा में हैडमास्टर की सूचना आई। सूचना में लिखा था – पाँचवीं कक्षा के छात्र तपन ने एक साँड़ को सातवीं कक्षा में घुसाकर शिक्षक और छात्रों की दुर्गति की है तथा स्कूल के शीशे तोड़े हैं। इस अपराध के कारण उसे पंद्रह बेंत लगाई गई हैं और क्षति-पूर्ति के रूप में उस पर पच्चीस रुपए का जुर्माना किया गया है। भविष्य में ऐसा काम करने पर उसे स्कूल से निकाल दिया जाएगा। सूचना पाकर कुछ लड़कों ने मुँह टेढ़ा कर तपन की ओर देखा और कुछ ने उसकी हँसी उड़ाई।

उसी दिन शाम को हैडमास्टर स्कूल से लौटकर पदुमनि गाँव की तरफ घूमने निकले। बीच-बीच में वह योंही टहला करते थे। गाँव से वापस लौटते समय स्कूल के उस बदमाश लड़के तपन की एक और करतूत देख वे विस्मित हो उठे। एक भिखारिन की भीख माँगने की



टोकरी अपने सिर पर लिए एक हाथ से उस भिखारिन बुढ़िया को पकड़े तपन चला जा रहा था। कुछ दूरी पर उसी की कक्षा का एक लड़का नरेन और दूसरा महेश उस बुढ़िया की टोकरी सिर पर रखने के कारण तपन की हँसी उड़ाते आ रहे थे।

बात यह थी कि गाँव से भीख माँगकर लौटते हुए उस बुढ़िया को ज़ोरों का बुखार चढ़ आया था। टोकरी लेकर चलना तो दूर, उसे खुद कदम बढ़ाना भी मुश्किल हो गया था। बुढ़िया की ऐसी बुरी हालत देखकर तपन के मन में बड़ी वेदना हुई। उसने तुरंत टोकरी को अपने सिर पर ले लिया और कहा, "बूढ़ी दादी, मेरा हाथ पकड़कर चली चलो।" और बुढ़िया को हाथ से पकड़े वह उसके घर की ओर चल पड़ा था।

हैडमास्टर को आते देखकर नरेन और महेश ने उन्हें नमस्ते किया और तपन की ओर देखते हुए व्यंग्य से हँस दिए। मतलब, तपन की करतूत अब हैडमास्टर महोदय खुद ही देख लें। हैडमास्टर ने बात का पता लगाने के लिए बुढ़िया से पूछा। बुढ़िया ने बुखार से काँपते हुए सारी बातें बता दीं। तपन की ओर उँगली दिखाकर उसने कहा, "बाबा, यह बच्चा अगर न होता तो आज मुझे इसी सड़क के किनारे पड़े रहना पड़ता। भगवान इस लाल का भला करे। उन दोनों लड़कों ने भी मेरी हालत देखी, मगर मदद करना तो दूर, उलटे मेरी मदद करने वाले इस बच्चे की ही खिल्ली उड़ाते आ रहे हैं। कैसे निर्दयी हैं ये!" कहती हुई बुढ़िया थकावट के मारे हाँफने लगी।

सारी बातें समझकर हैडमास्टर ने नरेन और महेश को डाँटकर वहाँ से भगा दिया और बुढ़िया को उसके घर पहुँचा देने के लिए तपन से कहकर उन्होंने अपनी राह ली।

इसके दो हफ़्ते बाद हैडमास्टर उस दिन मधुकुछि गाँव में टहलते हुए घर की ओर लौट रहे थे। राह में एक दृश्य देखकर वे दंग रह गए। उन्होंने देखा – उस उपद्रवी साँड़ की एक टाँग किसी ने तोड़ डाली है। तपन उसे पकड़कर कपड़े की पट्टी बाँध, कुछ जंगली पौधों का रस निचोड़ कर उस पर डाल रहा है। उसकी आँखें भरी हुई हैं। हैडमास्टर जब वहाँ आकर खड़े हुए तो वह चौंक-सा गया और उसने दोनों हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। हैडमास्टर ने तपन की आँखों की ओर देखते हुए पूछा, "तपन तू यहाँ क्या कर रहा है?"

"सर, किसी दुष्ट लड़के ने इस बेचारे की एक टाँग तोड़ डाली है। इसे बड़ी तकलीफ़ हो रही है। सर, अनबोला जीव है, इसी कारण आदमी जैसी चीख-पुकार नहीं मचा पाता। अनबोले जीव को इस तरह से तकलीफ़ देना बुरा है, सर!" तपन ने बड़े दुखी मन से हैडमास्टर से कहा।

"अरे, तूने तो इसी साँड़ को 'बड़ा दुष्ट है' कहकर उस दिन लगाम लगाकर दौड़ाया था? फिर आज यह तेरे लिए इतना भला कैसे हो गया?"

"सर, पहले यह दुष्ट था, यह सच है। मगर जिस दिन मैंने लगाम लगाई थी, उसी दिन से यह सुधर गया था। आदमी को मारना तो दूर, आदमी को देखते ही डर के मारे राह से हट जाता था। सर, ऐसी हालत में बेचारे को यों मारना उचित न था। इसे बड़ी तकलीफ़ हो रही है। इसी कारण मैं इसका घाव धोकर, जंगली पत्तियों का रस निचोड़कर पट्टी बाँध रहा हूँ। पिताजी ने बताया था, ये जंगली पत्तियाँ घाव की अच्छी दवा हैं" – तपन ने जवाब दिया।

साँड़ की तकलीफ़ से उसका मन भी भारी था, आँखें डबडबाई हुई थीं। हैडमास्टर ने क्षण भर कुछ सोचा, इसके बाद तपन के चेहरे की ओर देखते हुए प्यार से उसके गालों को सहलाया, कुछ कहा नहीं। वहाँ से वे घर की ओर चल पड़े। उनकी आँखें भी भर आई थीं, साँड़ के लिए नहीं, तपन के लिए।

ज्ञानपीठ हाई स्कूल में पुरस्कार वितरण समारोह का दिन था। दो बजे से सभा का आयोजन था। गुवाहाटी के किसी कॉलेज के अध्यक्ष को सभा की अध्यक्षता करने के लिए आमंत्रित किया गया था। हैडमास्टर रवीन बरुआ ने इस बार अन्य पुरस्कारों के अलावा एक विशेष पुरस्कार भी देने की व्यवस्था की थी। घोषणा कर दी गई थी – स्कूल के सबसे उत्तम चरित्रवान लड़के को यह पुरस्कार दिया जाएगा। वह पुरस्कार महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और लालबहादुर शास्त्री के जीवन चरित्र की तीन पुस्तकों के रूप में दिया जाने वाला था।

दस बजे स्कूल लगा। इस नए पुरस्कार के बारे में भी सभी कक्षाओं के लड़के आपस में चर्चा कर रहे थे। पाँचवीं कक्षा में नरेन तपन की ओर संकेत करता हुआ व्यंग्य से हँस रहा था। उसने ऊँची आवाज़ में पास बैठे भवेश से कहा, "सुना है, भवेश! इस बार हमारे स्कूल में उत्तम चरित्र के लिए जिस पुरस्कार की घोषणा की गई है, वह हमारी कक्षा के तपन को मिलने वाला है।" यह सुनते ही कक्षा के सभी लड़के खिलखिलाकर हँस पड़े। शर्म और अपमान से तपन का चेहरा स्याह हो गया। फिर भी वह सिर झुकाए चुप ही रहा।

सभा आरंभ हुई। अध्यक्ष के आसन ग्रहण करने के बाद सचिव ने प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। फिर लड़के-लड़कियों के नृत्य-गीत, कविता-पाठ आदि कार्यक्रम हुए। उपस्थित सज्जनों की ओर से दो-चार व्यक्तियों ने भाषण दिए। अध्यक्ष के भाषण के पश्चात् पुरस्कार वितरण आरंभ हुआ। विभिन्न विषयों में कई छात्र-छात्राओं को पुरस्कार मिले। लोगों की तालियों के बीच तथा अध्यक्ष के हाथों पुरस्कार प्राप्त कर सबने गौरव का अनुभव किया। अब नया विशेष पुरस्कार देने की बारी आई। उपस्थित लोगों की आँखों में उत्सुकता छाई हुई थी। वह विद्यार्थी भला है कौन, जो पाँच सौ से अधिक छात्र-छात्राओं में अपने को सबसे चरित्रवान छात्र के रूप में ला सकता है। तभी हैडमास्टर ने अध्यक्ष और उपस्थित सज्जनों को संबोधित करते हुए कहा, "माननीय अध्यक्ष महोदय एवं सज्जन वृंद, अब हमारे स्कूल के सबसे चरित्रवान छात्र को विशेष पुरस्कार देने की बारी है। वह पुरस्कार पाँचवीं कक्षा के विद्यार्थी श्री तपन कुमार हजारिका को देना तय हुआ है।"

हैडमास्टर की घोषणा सुनते ही वहाँ उपस्थित स्कूल के इक्कीस शिक्षकों और पाँच सौ से अधिक छात्रों की ज़बान पर ताला पड़ गया। नरेन और भवेश के चेहरे ऐसे स्याह हो गए मानों किसी ने उनपर बोतल भर काली स्याही उड़ेल दी हो।

हैडमास्टर की ज़बान से अपना नाम सुन कर तपन को पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ था। इसलिए घोषणा सुनकर भी पुरस्कार लेने के लिए उठकर जाने की हिम्मत उसमें नहीं थी। जब हैडमास्टर ने फिर से 'तपन कुमार हजारिका – पाँचवीं कक्षा' – कहकर पुकारा तो उसे लगा, जैसे उसके सिर में चक्कर आ गया हो। स्कूल में जो 'सबसे बुरे लड़के' के रूप में चर्चित है, भला उसे ही क्यों आज उत्तम चरित्रवान छात्र का पुरस्कार देने के लिए पुकारा जा रहा है? किसी तरह उठकर वह अध्यक्ष के पास गया। उन्हें प्रणाम कर उसने हाथ बढ़ाया और पुरस्कार ग्रहण किया।

पुरस्कार प्रदान करने के बाद हैडमास्टर ने वर्णन किया कि तपन ने किस प्रकार उस बुढ़िया भिखारिन की मदद की थी और किस तरह बेज़बान जीव उस साँड़ की



सेवा की थी। फिर खुश होकर उन्होंने अपनी ओर से भी तपन को पाँच रुपया पुरस्कार दिया।

तालियों से सभा गूँज उठी। तपन की आँखों में खुशी के आँसू छलक आए।

– अनंत देव शर्मा

(रूपांतरण – नवारुण वर्मा)

प्रश्न-अभ्यास

1. तपन के साथी उसे क्यों पसंद करते थे?
2. किन उत्पातों के कारण हैडमास्टर तपन से क्रुद्ध हुए?
3. तपन के बारे में हैडमास्टर के विचार क्यों बदल गए?
4. किन घटनाओं के कारण तपन को विशेष पुरस्कार के लिए चुना गया?
5. तपन के चरित्र की किन विशेषताओं ने आपको प्रभावित किया और क्यों?

8. वन देवी

हिमालय की तराई में एक राजा रहता था। वह एक ऐसा सुंदर और अनोखा महल बनाना चाहता था जैसा महल दुनिया में कहीं भी न हो। इसीलिए उसने निर्णय किया कि वह ऐसा महल बनवाएगा जो एक ही खंभे पर टिका हो और वह खंभा उसके राज्य के सबसे ऊँचे देवदार के पेड़ का हो।

देवदार का अर्थ होता है – देवताओं का पेड़। देवताओं का पेड़ होने के कारण इसे बड़ा ही पवित्र माना जाता है। इसीलिए मंदिर-निर्माण में इसी की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य कई कारणों से भी इसका महत्त्व है। इसकी लकड़ी में कीटाणुनाशक तत्व होते हैं। इसीलिए किसी भी हवन या यज्ञ में देवदार की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। इसके प्रयोग से वायुमंडल का शुद्धीकरण होता है जिससे हमारा स्वसन तंत्र स्वच्छ और सबल होता है। आयुर्वेद में तो इसके प्रयोग से दर्द, जुकाम, लकवा आदि की बहुत सारी औषधियाँ भी तैयार की जाती हैं। इसका तेल बच्चों-बूढ़ों सभी के शरीर में मालिस के काम आता है। देवदार के इन गुणों के कारण ही राजा देवदार के खंभे पर वह अनोखा महल बनाना चाहता था।

उस राजा के राज्य में देवदार के बहुत-से पेड़ थे। उनमें से कुछ बहुत ऊँचे और मजबूत थे।

एक दिन राजा ने अपने महामंत्री को बुलाकर कहा, "कर्मचारियों को जंगल में भेजो और जो सबसे बड़ा देवदार उन्हें मिले, उसे काटकर लाने के लिए कहो।"

महामंत्री ने बीस लोगों को पेड़ लाने के लिए भेजा, लेकिन वे सभी खाली हाथ लौट आए। आकर उन्होंने बताया कि राज्य में बड़े-बड़े देवदार हैं, लेकिन उन्हें ढोकर लाना बड़ा कठिन है।

जब राजा ने यह सुना तो उसने अपने बेटे को बुलाकर कहा, "अपने घोड़ों को ले जाओ और घोड़ों की मदद से एक बड़ा देवदार लाकर दो।"

राजकुमार अपने घुड़सवारों के साथ निकला। लेकिन, थोड़े ही दिनों के बाद लौट आया। आकर उसने कहा, "कोई भी घोड़ा पेड़ को एक इंच भी नहीं खींच सका। हमने बैलों से भी जोर लगवाया। लेकिन, वह भी बेकार गया।"

"ठीक है, तब हाथियों का जोर लगवाओ" – राजा ने कहा। हाथी मँगवाए गए, लेकिन वे पहाड़ की ढ़लान पर चढ़ नहीं पाए। इसलिए हाथियों को वापस लौटना पड़ा।

"ठीक है अब मेरे बगीचे में जाकर जंगल के देवदार जैसा ही दूसरा देवदार ढूँढ़ो और सात दिन के अंदर मुझे लाकर दो" – राजा ने आदेश दिया।

खूब खोजबीन करने के बाद राजा के कर्मचारियों ने शहर के पास एक विशाल देवदार का वृक्ष ढूँढ़ निकाला। देवदार के उस वृक्ष की पूजा आस-पास के गाँव के लोग करते थे, क्योंकि उसके भीतर एक देवी का निवास था। उसी देवी ने उस पेड़ को इतनी विशालता और सुंदरता दी थी।

पेड़ के विषय में पता चलने के बाद महामंत्री और उनके कर्मचारी फूल-दीप आदि लेकर देवी की स्तुति करने आए और देवी से विनती करने लगे कि वह इस पेड़ को छोड़कर चली जाए, कहीं और। राजा का आदेश है कि सात दिनों के अंदर उस पेड़ को काट दिया जाए।

उन्होंने पेड़ के चारों ओर दीप जलाए, उसकी शाखाओं पर फूलों की मालाएँ चढ़ाईं और पत्तियों में फूलों के गुच्छे बाँधे। फिर देवी को मनाने के लिए उन्होंने नाचना और गाना शुरू कर दिया –

क्रूर कुल्हाड़ी ले हम आए
तेरा घर बिखराने को।
क्षमा करो हे वन देवी!
हम आए तुझे मनाने को,



राजा को खुश करने खातिर
सुंदर पेड़ गिराने को।

देवी ने सुना और वह समझ गई कि ये लोग हठी राजा के आदेश को पालन करने पर विवश हैं। इसीलिए मुझे समाप्त करने के अपराध से पहले अनुनय-विनय कर रहे हैं। वह थोड़ी देर शांत रही। फिर उसके सभी पत्ते आपस में बात करने लगे। फिर ऊपर की डालियाँ झुकने लगीं। इसे देखकर सभी कर्मचारी यह सोचकर संतुष्ट हो गए कि देवी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली है।

उस रात जब राजा सोया हुआ था तब चमचमाते हुए हरे-हरे पत्तों में लिपटी एक दिव्य आकृति उसके स्वप्न में प्रकट हुई। उसके प्रकट होने से राजा को वसंत ऋतु में होनेवाली पत्तों की सरसराहट जैसी ध्वनि महसूस होने लगी।

पूरा वातावरण देवदार की खुशबू से सुगंधित हो गया। मधुर संगीत-से धीमे-धीमे स्वर में उस आकृति ने राजा से कहा –

"मैं देवदार की देवी हूँ। तुम्हारे कर्मचारियों ने आज मुझे बतलाया है कि तुम मुझे काट डालना चाहते हो। मैं तुमसे प्रार्थना करने आई हूँ कि तुम अपना विचार बदल दो।"

स्वप्न में हठी राजा ने उत्तर दिया, "मैं निर्णय कर चुका हूँ कि देवदार के खंभे पर ही अपना विशाल महल खड़ा करूँगा। मैंने दूर-दूर तक अपने कर्मचारियों को देवदार की तलाश में भेजा। उन्होंने तुम्हारे ही पेड़ को मेरे महल के लिए सबसे उपयुक्त और सुगमतापूर्वक लाने योग्य बताया है। इसीलिए तुम्हारा पेड़ कटवाना ही पड़ेगा।"

"लेकिन तुम समझने का प्रयास क्यों नहीं करते राजा! सैकड़ों वर्षों से तुम्हारे राज्य की प्रजा मेरी पूजा करती आ रही है। मैं उन्हें अपने बच्चों की तरह प्यार करती हूँ और हमेशा उनकी भलाई करती हूँ। मेरे विशाल शरीर में चिड़ियों के अनगिनत घोंसले हैं जिनमें थके-हारे पंछी अपने जीवन का सुख लेते हैं। मेरी जड़ में उगनेवाली हरी-हरी घासें, मुझसे औषधीय गुण और शीतल छाया प्राप्त करती हैं। उन कोमल घासों पर छोटे-छोटे बच्चे नंगे पैर खेलते हैं और उनकी देह में उन घासों से पौष्टिक तत्व प्रवाहित होते हैं। मैं ऐसा होते देखकर उन बच्चों के भविष्य के प्रति संतोष से भर जाती हूँ। झुलसती गर्मी से थककर पथिक मेरी छाँह में विश्राम करते हैं। इस प्रकार मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी भी मेरे पास आकर संजीवनी प्राप्त करते हैं। इसीलिए मुझे धरती माँ आशीष देती है और मेरी सुरक्षित शाखाओं के नीचे नित नई-नई जड़ी-बूटियों को जन्म देती है। मैं धरती माँ को अपनी मजबूत जड़ों से बाँधकर रखती हूँ और मिट्टी से खनिज और लवण लेकर वायुमंडल में बिखेरती रहती हूँ, जिससे वायु शुद्ध होती है और तुम्हारे राज्य की प्रजा स्वस्थ और प्रसन्नचित्त बनी रहती है।"

"वह सब तो ठीक है देवी! लेकिन अपना महल बनवाने के लिए मैं इन सब चीजों की परवाह नहीं कर सकता। इसीलिए तुम्हें कटवाने का मैंने विचार कर लिया है और वह विचार कभी बदल नहीं सकता" – हठी राजा बोला।

निराश और दु:खी होकर देवी ने कहा, "तब तुम मेरा एक अनुरोध मान लो राजा, मुझे एक बार में मत कटवाना, तीन भाग में बाँटकर तीन बार में कटवाना। एक भाग मेरे सिर का होगा, जिसमें हरियाली सहित झूमती पत्तियाँ हैं, दूसरा भाग मेरे वक्ष का होगा, जिसमें सैकड़ों टहनियाँ और डालियाँ मेरी सबल बाहों के समान हैं और अंतिम भाग मेरे धड़ और

जड़ का होगा, जिसके कारण मेरे भारी और मजबूत अंग अपने कर्त्तव्यों का पालन कर पाते हैं।"

"यह तो बड़ा विचित्र अनुरोध है। इससे पहले किसी को मैंने इस प्रकार तीन बार में मरने की इच्छा व्यक्त करते नहीं सुना था। मृत्यु की इस कठिन पीड़ा को एक ही बार में तुम क्यों नहीं झेलना चाहती हो" – राजा ने पूछा।

"इस बात को तुम नहीं समझ पाओगे राजा, क्योंकि तुम अपने स्वार्थ में अंधे हो चुके हो। अपने हठ के आगे दूसरे प्राणियों के जीवन का महत्त्व तुम्हें समझ में नहीं आ सकता। मेरे जीवन से जो लाभ इस धरती के प्राणियों को मिल रहा है, वह तो मैं पहले ही बता चुकी हूँ। एक बार में मेरे कटकर मरने में भारी नुकसान होगा, इसे तुम जान लो – मुझसे



दर्जनों देवदार पैदा हुए हैं जो मेरे आस-पास फैले हैं। यदि तुम मुझे एक बार में ही कटवा दोगे तो मेरे भार से कुचलकर वे सब के सब मारे जाएँगे। यदि तुम मुझे तीन बार में कटवाओगे तो उनमें से कुछ बच भी सकते हैं और इस धरती के प्राणियों को सुखी बनाने की अपनी जिम्मेदारी का पालन कर सकते हैं। बोलो राजा, क्या तुम मेरा अनुरोध मानोगे"?

"ठीक है" – राजा ने कहा। फिर देवी अंतर्ध्यान हो गई।

अगली सुबह जब राजा सोकर उठा तो वह पूरी तरह बदल चुका था। उसने अपने बेटे और महामंत्री को बुलाकर कहा, "मैंने अपना विचार बदल दिया है। अब महल के लिए बनने वाला खंभा लकड़ी का नहीं, पत्थरों का होगा। क्योंकि देवदार में रहने वाली आत्मा मेरी आत्मा से अधिक नेक है। उसने मेरी आँखें खोल दी हैं।" फिर राजा ने सबको सपने वाली बात बताई, जिसे सुनकर सभी चकित हो गए।

इसके बाद राजा ने अपने महल का विशाल खंभा पत्थरों का बनवाया, जिसके चारों ओर उसने सुंदर बगीचे लगवाए। बगीचे में शहर और आस-पास के गाँवों के बच्चे कोमल-कोमल घासों पर बैठने और सुंदर-सुंदर फूलों और पेड़ों का आनंद उठाने के लिए आते थे। राजा को देखकर बाकी लोगों ने भी लकड़ी के घर बनाने बंद कर दिए। उनके घर भी पत्थरों से बनने लगे। देवदार के साथ-साथ दूसरे पेड़-पौधे भी अब चारों तरफ मुक्त होकर फैलने लगे और प्रकृति के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन निर्बाध रूप से करने लगे।

– रस्किन बांड

(रूपांतरण : मनीष मिश्र)

प्रश्न-अभ्यास

1. राजा देवदार वृक्ष के खंभे पर ही टिका महल क्यों बनवाना चाहता था?
2. महामंत्री और उनके कर्मचारियों ने वनदेवी से क्या प्रार्थना की और क्यों?
3. वनदेवी ने राजा से देवदार के वृक्ष को काटने से क्यों मना किया?
4. वनदेवी ने देवदार को किस प्रकार काटने का अनुरोध किया और क्यों?
5. वनदेवी के अनुरोध का राजा के मन पर क्या प्रभाव पड़ा?
6. प्रजा ने लकड़ी के घर बनवाने क्यों बंद कर दिए?

9. शापमुक्ति

एक दिन ऐसा हुआ कि मैं अपनी बूढ़ी दादी की आँखों का इलाज कराने दिल्ली के एक बड़े प्रसिद्ध नेत्र-चिकित्सक डॉ. प्रभात के पास गया। लगभग अंधी हो चुकी दादी को सहारा दिए जब मैं डॉ. प्रभात के कमरे में पहुँचा तो उन्होंने मुसकराते हुए दादी का स्वागत किया, "आओ, आओ, दादी अम्मा! कहो, क्या तकलीफ़ है?"

दादी ने आवाज़ से ही डॉक्टर की उम्र का अनुमान लगा कर कहा, "कोई तकलीफ़ नहीं बेटा। बस बुढ़ापे की मारी हूँ। बुढ़ापे में नजर कमज़ोर हो ही जाती है।"

"पर मैं तो आँखों का डॉक्टर हूँ, दादी अम्मा! बुढ़ापे का इलाज मेरे पास कहाँ?" – डॉ. प्रभात ने हँसते हुए कहा।

मेरी दादी भी कम विनोदी स्वभाव की नहीं। कहने लगीं, "कोई बात नहीं, बेटा! तुम आँखों का इलाज ही कर दो, बुढ़ापे का इलाज तो भगवान के पास भी नहीं है।"

यह सुनकर डॉ. प्रभात हँस पड़े और दादी से बात करते हुए उनकी आँखों की जाँच करने लगे। उन्होंने विस्तार से, कई उपकरणों और यंत्रों की सहायता लेकर दादी की आँखों की जाँच की। बीच-बीच में वे बातचीत और हँसी-मज़ाक भी करते जाते थे।

मैं चुपचाप बैठा डॉ. प्रभात की ओर देख रहा था। पहले तो मुझे उनकी हँसी ही कुछ जानी-पहचानी लगी थी, फिर ध्यान से देखने पर उनका चेहरा भी कुछ परिचित-सा मालूम हुआ। लेकिन याद नहीं आ रहा था कि मैंने इन्हें पहले कहाँ देखा है। आखिर जब उन्होंने दादी की आँखों की पूरी जाँच कर ली तो मैंने पूछ ही लिया, "आप कहाँ के रहने वाले हैं, डॉक्टर साहब?"

"इलाहाबाद का हूँ, क्यों?"

"अरे हम भी इलाहाबाद के ही हैं" – दादी मुझसे पहले ही बोल उठीं।

"अच्छा? बड़ी खुशी हुई" – डॉ. प्रभात ने सचमुच खुश होकर पूछा, "इलाहाबाद में कहाँ रहते हैं आप लोग?"

दादी ने ज्यों ही हमारे इलाहाबाद वाले घर का पता-ठिकाना बताया, डॉ. प्रभात ने मेरी तरफ़ देखा और अचरज भरी प्रसन्नता से बोले, "अरे, तुम बब्बू तो नहीं हो?"

"अरे तुम मंटू?" अचानक मेरे मुँह से निकल गया, "तुम.... आप मेरे बचपन के मित्र मंटू हैं न?"

"हाँ भई, मैं मंटू ही हूँ। वाह, यार तुम खूब मिले! तुम तो शायद जब दूसरी या तीसरी कक्षा में पढ़ते थे, तभी अपने परिवार के साथ दिल्ली चले आए थे। है न? वाह, मुझे तो स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि जीवन में फिर कभी तुमसे भेंट होगी। सच, बड़ी खुशी हुई तुमसे मिलकर।"

"मुझे भी" – मैंने अत्यंत प्रसन्न होकर कहा।

तभी डॉ. प्रभात ने दादी का चेहरा ध्यान से देखा और अचानक उनकी मुसकान लुप्त हो गई। चेहरा किसी दुखदाई स्मृति में काला-सा हो आया। दादी की अत्यधिक कमज़ोर आँखों को डॉक्टर के चेहरे का यह भाव-परिवर्तन नज़र नहीं आया। वे प्रसन्न होकर पूछने लगीं, "अच्छा, तो तुम दोनों बचपन में साथ-साथ खेले हो? यह तो बड़ा अच्छा संयोग रहा। तुम तो अपने ही हुए, डॉक्टर बेटा। हाँ, तुमने अपना क्या नाम बताया? मंटू? इलाहाबाद में हमारे पड़ोस में एक वकील रहते थे, उनके लड़के का नाम भी कुछ ऐसा ही था। बड़ा बदमाश लड़का था..."

डॉ. प्रभात ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे सहसा बहुत गंभीर हो गए। दादी के लिए दवाई का पर्चा लिखते हुए उन्होंने कहा, "ये बातें फिर कभी होंगी, दादी अम्मा! बाहर और भी कई रोगी इंतज़ार कर रहे हैं। मैं तुम्हारी दवाई लिख रहा हूँ। बाज़ार से मँगवा लेना और दिन में तीन बार आँखों में डालती रहना। फिर अगले सप्ताह आज के ही दिन आ जाना। तुम्हारी आँखों का ऑपरेशन करना होगा। घबराना मत, ईश्वर ने चाहा तो तुम्हारी आँखें अच्छी हो जाएँगी।"

बाहर आते ही दादी ने मुझसे पूछा, "यह उसी वकील का बेटा मंटुआ था न?"

"हाँ, दादी! बचपन में मेरे साथ पढ़ता था।"

"बस, तो अब इसके पास दुबारा आने की ज़रूरत नहीं। मैं इस दुष्ट के हाथों अपनी आँखें नहीं फुड़वाऊँगी।"

"कैसी बातें करती हो, दादी! यह तो बहुत माना हुआ डॉक्टर है और अब तो अपनी जान-पहचान का भी निकल आया। उसे दुष्ट क्यों कह रही हैं?"

"तू भूल गया, इसने वहाँ इलाहाबाद में क्या किया था?"

"क्या किया था?"

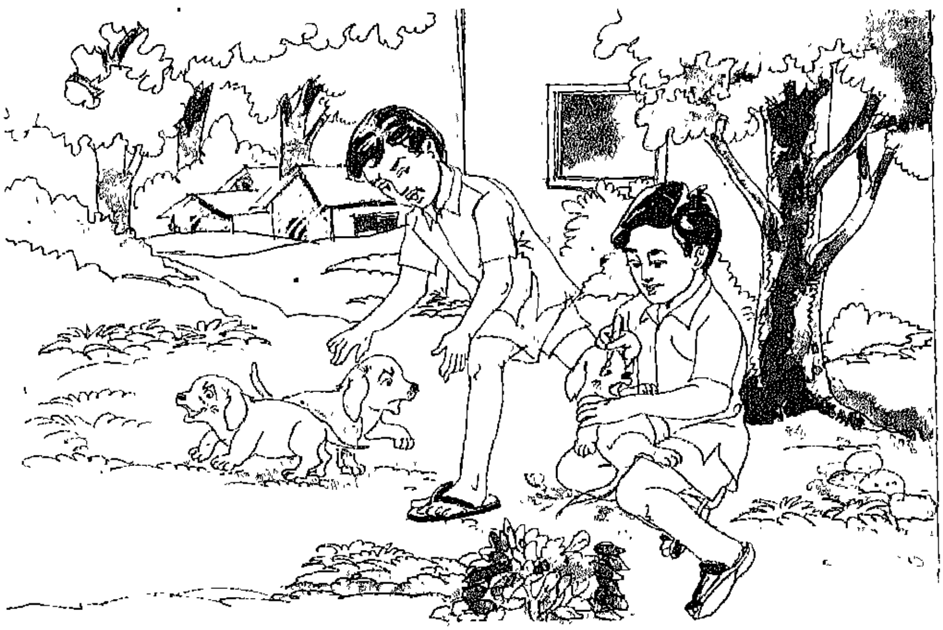
"अरे, तुझे याद नहीं, इसने मुहल्ले की कुतिया के तीन पिल्लों की आँखें आक के पौधे का दूध डालकर फोड़ दी थीं? तूने ही तो यह बात हम लोगों को बताई थी। उनमें से एक अंधा पिल्ला तूने जिद्द करके पाला था, यह भी तुझे याद नहीं?"

मैं सचमुच ही सब कुछ भूला हुआ था। लेकिन दादी के याद दिलाने पर एक धुँधली-सी स्मृति उभरी और ज्योंही मैंने दिमाग पर थोड़ा जोर दिया, बचपन की यह दु:खद स्मृति सहसा कल की-सी घटना के रूप में स्पष्ट होकर मेरी आँखों के आगे आ गई।

इलाहाबाद में हमारे पड़ोसी वकील साहब की कोठी के पीछे एक बहुत बड़ा बाग और घास का मैदान था। मैं मंटू के साथ अक्सर वहाँ खेला करता था। बाग की मेंड़ के पास आक के बहुत से पौधे उगे हुए थे। एक दिन हम खेल-खेल में आक के पत्ते तोड़ने लगे। उधर से गुजरते हुए हमारे स्कूल के अध्यापक ने हमें देख लिया। उन्होंने हमें डाँट लगाई और बताया कि आक के पत्ते कभी नहीं तोड़ने चाहिए, क्योंकि उन्हें तोड़ने से जो गाढ़ा-गाढ़ा सफ़ेद दूध-सा निकलता है, वह यदि आँखों में चला जाए तो आदमी अंधा हो जाता है।

यह जानकारी हम लोगों के लिए एकदम नई और विस्मयकारी थी। वास्तव में ऐसा होता है या नहीं, यह देखने के लिए मंटू ने एक प्रयोग कर डाला था। ठंड के दिन थे

और मुहल्ले में आवारा घूमने वाली एक कुतिया ने वकील साहब की कोठी के पीछे पड़ी सूखी टहनियों के ढेर के नीचे तीन पिल्ले दिए थे। पिल्ले बड़े सुंदर थे। मैं और मंटू उनसे खेला करते थे। आक के दूध के भयानक असर की जानकारी मिलने के अगले दिन जब मैं स्कूल से आकर खाना खाने के बाद मंटू के साथ खेलने गया तो मैंने देखा, मंटू आक के पौधों के पास बैठा है और उसके घुटनों में दबा एक पिल्ला कें-कें कर रहा है। दो पिल्ले पास ही कूँ-कूँ करते इधर-उधर भटक रहे थे। नज़दीक जाकर मैंने देखा तो हैरान रह गया। मंटू आक के पत्ते तोड़-तोड़ कर उनका दूध पिल्ले की आँखों में डाल रहा था।



"यह तूने क्या किया, बेवकूफ़! पिल्ला अंधा हो जाएगा" – मैंने चिल्ला कर कहा।

मंटू ने उसे पिल्ले को नीचे रख दिया और बोला, "मैंने इन तीनों की आँखों में आक का दूध भर दिया है, अब देखेंगे, ये तीनों अंधे होते हैं या नहीं।"

उस गाढ़े चिपचिपे दूध से तीनों पिल्लों की आँखें बंद हो गईं। कुछ दिनों बाद आँखें तो शायद खुल गई थीं, लेकिन वे अंधे हो गए थे।

मंटू के इस कुकृत्य की जानकारी केवल मुझे ही थी। मैंने उसे उन प्यारे-प्यारे पिल्लों को अंधा बना देने के लिए बहुत बुरा-भला कहा था और वकील साहब से शिकायत करने की धमकी भी दी थी। लेकिन मंटू को एहसास हो गया था कि उसने अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए इस प्रयोग के रूप में एक बड़ा पाप कर डाला है। उसने गिड़गिड़ा कर मुझसे कहा था कि वह बात मैं किसी को न बताऊँ। मैं शायद बताता भी नहीं, लेकिन जब उन तीन पिल्लों में से दो, दिन-रात कूँ-कूँ करते, इधर से उधर भटकते मर गए, मुझे बहुत दुःख हुआ और उस दिन मैं बहुत रोया।

दादी, माँ और परिवार के अन्य सभी लोग मुझसे बार-बार पूछने लगे कि मैं क्यों रो रहा हूँ? पहले मैंने बात छिपा कर अपने मित्र मंटू को बचाने की कोशिश की, लेकिन फिर मुझे तीसरे पिल्ले का ध्यान आ गया, जो अभी जीवित था और उसकी जान बचाना मुझे मंटू को पिटाई से बचाने से ज्यादा जरूरी लग रहा था। इसलिए मैंने रोते-रोते सारी बात बता दी और उस पिल्ले की आँखों का इलाज करा देने की जिद्द पकड़ ली। सब लोगों ने मंटू को बुरा-भला कहा। वकील साहब ने उसकी पिटाई भी की। मुझे भी बहुत कुछ सुनना पड़ा, क्योंकि मैंने भी सब कुछ जानते हुए भी बात को तब तक छिपाए रखा, जब तक दो पिल्ले मर नहीं गए।

आखिर तीसरे पिल्ले को बचाने के प्रयास किए गए। मैंने जिद्द करके उसे पाल लिया। पिताजी ने उसकी आँखों का इलाज भी कराया, लेकिन वह अंधा ही रहा। माँ और दादी उसकी बड़ी सेवा करती थीं। मैं भी उसका बहुत ध्यान रखता था। उस समय तो उसकी जान बच गई, लेकिन जब वह बड़ा हो गया, एक दिन घर से बाहर निकल गया और सड़क पर किसी वाहन से कुचल कर मर गया।

उस घटना को याद कर मैं हैरान रह गया। बचपन में तीन पिल्लों की आँखें फोड़ देने वाला मंटू आज इतना बड़ा नेत्र-चिकित्सक! इससे भी ज़्यादा हैरानी की बात यह थी कि लगभग पैंतीस साल पहले की वह घटना, जिसे मैं भूल चुका था, दादी को अभी तक याद थी।

निश्चय ही वह घटना डॉ. प्रभात को भी याद होगी। तभी तो वह हम लोगों का परिचय पाते ही अचानक चुप, गंभीर और उदास हो गए थे।

"लेकिन दादी, बचपन की उस बात को लेकर अब तो डॉ. प्रभात को बुला-भला कहना ठीक नहीं" – मैंने दादी को समझाने की कोशिश की, "अब वे मंटू नहीं, देश के माने हुए नेत्र-चिकित्सक हैं, दूर-दूर से लोग उनके पास अपनी आँखों का इलाज कराने आते हैं। अब तक तो वे हजारों लोगों को उनकी खोई हुई नेत्र-ज्योति लौटा चुके होंगे। क्या उनकी इतनी बड़ी सेवा से बचपन की अबोध अवस्था में किया हुआ वह पाप अब तक धुल नहीं गया होगा?"

"कुछ भी हो, मैं उससे अपनी आँखों का इलाज नहीं कराऊँगी" – दादी ने निश्चय के स्वर में कहा।

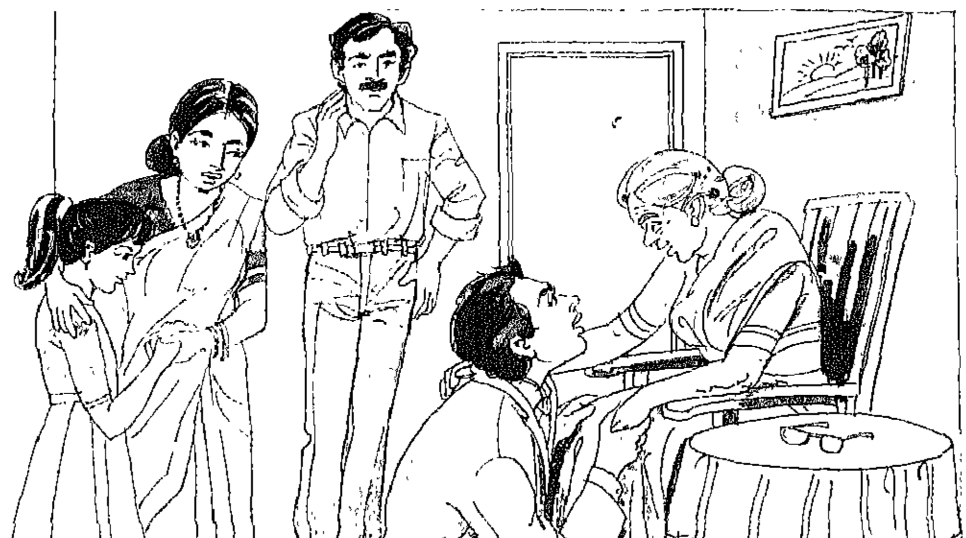
दादी का स्वभाव बिलकुल बच्चों का-सा है। हठ पकड़ लेती हैं तो किसी के मनाए नहीं मानतीं। मैंने उन्हें बहुत समझाने की कोशिश की, लेकिन वे डॉ. प्रभात से इलाज कराने को तैयार न हुईं। आँखों में डालने की जो दवाई डॉ. प्रभात ने लिखकर दी थी, वह भी नहीं खरीदने दी। परिवार के सब लोगों ने उन्हें समझाया, लेकिन वे टस-से-मस नहीं हुईं।

आखिर शाम को मैंने डॉ. प्रभात को टेलीफोन किया और दादी के हठ के बारे में बताया। डॉ. प्रभात ने गंभीर होकर सब कुछ सुना और बोले, "तुम अपने घर का पता बताओ, मैं स्वयं आकर दादी अम्मा को समझाऊँगा।"

लगभग एक घंटे बाद डॉ. प्रभात हमारे घर में थे और दादी से कह रहे थे, "दादी अम्मा! मैंने बचपन में जो पाप किया था, उसे मैं आज तक नहीं भूला हूँ और मैं उस शाप को भी नहीं भूला हूँ, जो आपने मुझे दिया था। जब तक आप इलाहाबाद में रहीं, मुझे देखते ही कहने लगती थीं" अरे, कंबख्त मंटूआ, तूने मासूम पिल्लों की आँखें फोड़ी हैं, तेरी आँखें भी किसी दिन इसी तरह फूटेंगी। आप के इस शाप से मुझे अपने पाप का बोध

हुआ और मैंने फैसला कर लिया कि मुझे जीवन में नेत्र-चिकित्सक ही बनना है। मेरी आँखें तो आप के शाप के कारण कभी-न-कभी फूटेंगी ही, पर उससे पहले मैं बहुत-सी आँखों को रोशनी दे जाऊँगा। उन बहुत-सी आँखों में दो आँखें आपकी भी होंगी, दादी अम्मा।"

डॉ. प्रभात की बातों में न जाने कैसा जादू था कि दादी की ही नहीं, हम सबकी आँखें भर आईं। दादी तो इतनी भाव-विह्वल हो उठीं कि उन्होंने डॉ. प्रभात को पास बुला कर हृदय से लगा लिया। उसने सिर पर स्नेहपूर्वक हाथ फेरते हुए कहा, "जीते रहो, मेरे लाल! तुम्हारी आँखों की ज्योति हमेशा बनी रहे।"



इसके बाद दादी ने मुझे कहा, "अरे बबुआ, तेरा बालसखा आया है, इसकी खातिरदारी नहीं करेगा? जा, इसके लिए अच्छी-सी मिठाई लेकर आ... और सुन, इसने मेरी आँखों के लिए जो दवाई लिखी थी न, वह भी खरीद लाना।"

– रमेश उपाध्याय

प्रश्न-अभ्यास

1. बचपन में बिछुड़े बब्बू और मंटू की मुलाकात किस प्रकार हुई?
2. दादी का चेहरा ध्यान से देखने पर डॉ. प्रभात की मुसकान क्यों लुप्त हो गई?
3. दादी ने डॉ. प्रभात से अपनी आँखों का इलाज करवाना क्यों मना कर दिया?
4. दादी को मंटू के कुकृत्य का कैसे पता चला?
5. मंटू ने बचपन में हुई भूल का प्रायश्चित किस प्रकार किया?
6. आपके विचार से इस कहानी के लिए शापमुक्ति के अतिरिक्त निम्नलिखित में से कौन-सा शीर्षक उपयुक्त होगा?

   (क) प्रायश्चित (ख) भूल-सुधार (ग) सेवाव्रत (घ) ज्योति-दान

10. जादुई दर्पण

एक शिष्य नि:स्वार्थ भाव से अपने गुरुजी की सेवा करता था। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर गुरुजी ने उसे एक जादुई दर्पण दिया। उस जादुई दर्पण की यह खूबी थी कि उसे जिस व्यक्ति के सामने रखा जाता, उस व्यक्ति के भीतर के भावों को वह झलका देता था। शिष्य उस दर्पण को पाकर बहुत खुश हुआ।

दूसरे ही दिन गुरुजी के पास आने वाले सारे श्रद्धालु भक्तों के सामने उसने वह दर्पण रख दिया। वह देखकर हैरान हुआ कि सभी के भीतर क्रोध की ज्वाला है, सभी के मन में अहंकार रूपी पर्वत खड़ा है, सभी के हृदय में घृणा की भावना है, सभी के अंदर ईर्ष्या की अग्नि भड़क रही है, सभी के भावों में लालच की तीव्रता है, सभी के अंतस् में कपट वृत्ति पनप रही है। यह सब देखकर वह शिष्य बड़ा परेशान हुआ। उसने सोचा, क्या सत्संग में आनेवाले सारे भक्त जनों में इतनी अधिक बुराइयाँ हैं? क्या गुरुजी के उपदेशों से इनके भीतर सदगुणों का विकास अभी तक नहीं हुआ है और न इनके कषाय खत्म हुए हैं? जादुई दर्पण पा जाने के बाद उस शिष्य का सारा दिन सबके भीतर की बस बुराइयों को देखने में ही व्यतीत होने लगा।

एक दिन शिष्य ने सोचा – मैंने सभी भक्तों की बुराइयों को तो जान लिया अब मुझे अपने गुरुजी के हृदय को भी टटोलना चाहिए। कहीं ऐसा तो नहीं कि जिनकी मैंने बरसों सेवा की है, उनका मन भी विकारों से मलिन हो?

यह सोचकर उसने एक दिन वह जादुई दर्पण अपने गुरुजी के सामने भी रख दिया। वह देखकर दंग हो गया अरे, मैं यह क्या देख रहा हूँ? गुरु जी के मन में भी इतना अहंकार? वही क्रोध की ज्वाला, मोह का जाल, लोभ का आकर्षण।



शिष्य तो आश्चर्यचकित हो गया और सोचने लगा, क्या मेरे गुरुजी के हृदय में भी ऐसे-ऐसे विकार भरे पड़े है! कहीं ऐसा तो नहीं कि यह दर्पण झूठी बातें झलकाता हो? नहीं, यह सामान्य दर्पण नहीं है। यह तो बड़ा जादुई दर्पण है। जो जैसा है भीतर से, वैसा ही तो दिखाएगा। धीरे-धीरे उसका मन गुरुजी से विमुख हो गया। एक दिन मौका पाकर वह अपना दर्पण लेकर वहाँ से निकल चला। अब वह जहाँ-जहाँ जाता और जो-जो श्रद्धालु भक्त उसकी सेवा करने को उत्सुक होते, वह उन सबके सामने वही जादुई-दर्पण रख देता था। फिर निराश होकर उसके मुँह से शब्द निकलते, इस दुनिया में किसी का भी दिल साफ नहीं है। यहाँ तो सभी के हृदय में ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, छल-कपट और क्रोध आदि भरे पड़े हैं।

यह सब देखकर वह हैरान और परेशान हो गया। इस प्रकार उसने दुनिया में हर कोने का भ्रमण किया और जिन-जिन लोगों से उसकी भेंट हुई, उन सबको देख लिया, परंतु उसे कहीं संतुष्टि नहीं हुई। कुछ बरसों बाद लौट कर वह गुरुजी के पास आ गया और बोला, "गुरुजी, मैं बहुत परेशान हो चुका हूँ। ऐसा क्यों है कि संसार के सभी व्यक्तियों के मन में नाना प्रकार के दोष भरे पड़े हैं? मैंने दुनिया के हर व्यक्ति को इस जादुई दर्पण में देखा तो पाया किसी का भी हृदय साफ और पाप रहित नहीं है। क्या संसार में सभी

लोग ऐसे ही होते हैं? किसी का भी मन पवित्र नहीं है? मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि कहाँ जाऊँ और किसके साथ रहूँ?"

शिष्य को इस प्रकार व्यथित देखकर गुरुजी मुस्कुराए। गुरुजी ने उठकर शिष्य का हाथ पकड़ा और दर्पण को शिष्य की ओर कर दिया। शिष्य ने पहली बार उस दर्पण में अपने मन का प्रतिबिंब देखा। वह देखकर हक्का-बक्का रह गया कि स्वयं उसके मन में भी कितना कचरा भरा हुआ है। मन का हर कोना क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, वासना आदि से भरा पड़ा है। वह अपनी बुराइयों को देखकर इतना घबरा गया कि पसीने-पसीने हो गया।



उसने गुरुजी से पूछा, "गुरुदेव, मैं यह क्या देख रहा हूँ, मेरा हृदय तो सभी के हृदयों से ज्यादा बुरा दिखाई दे रहा है?" गुरुजी ने सस्नेह शिष्य की ओर देखते हुए कहा, "यह दर्पण मैंने तुम्हें दूसरों के मन की बुराईयों को देखने के लिए नहीं, अपितु अपने मन की बुराइयों को देखने के लिए दिया था ताकि तुम स्वयं को पवित्र बना सको। परंतु तुमने इस दर्पण का प्रयोग मात्र दूसरों पर किया और दु:खी हुए। आज से इस जादुई दर्पण का प्रयोग तुम्हें स्वयं को देखने के लिए करना होगा।"

ज्ञानियों ने कहा है, हमें स्वयं के दोषों को देखकर उनका निवारण करना चाहिए। जो अपनी समस्त शक्ति को औरों की निंदा, आलोचना करने में व्यर्थ खर्च करते हैं, वे जिंदगी भर दु:खी रहते हैं। जो अपनी आँखों से अपने दोषों को देखते हैं वे अपने जीवन को निर्मल बना लेते हैं।

– साध्वी द्वय (कृपा एवं निधि)

प्रश्न-अभ्यास

1. जादुई दर्पण की क्या विशेषता थी?
2. जादुई दर्पण की सहायता से शिष्य ने गुरुजी के पास आने वाले श्रद्धालुओं के विषय में क्या जाना?
3. शिष्य का मन गुरुजी से विमुख क्यों हो उठा?
4. दुनिया के हर व्यक्ति के अंतर्मन को दर्पण में देखकर शिष्य दु:खी क्यों हुआ?
5. गुरुजी ने शिष्य को दु:ख का क्या कारण बतलाया?
6. हम अपने मन को निर्मल कैसे बना सकते हैं?

11. तीन लोक कथाएँ

(क) दुष्ट न छोड़े दुष्टता

किसी स्थान पर कुछ साधु रहते थे। एक दिन जब वे अपनी कुटी में बैठे हुए थे, एक साँप घबड़ाया हुआ उनके पास आया और उसने साधु से कहा – "बाबा, मुझे मारने के लिए कुछ लोग डंडा लेकर खदेड़ रहे हैं, आप मुझे कहीं छिपा दीजिए। मैं आपका यह उपकार जीवन भर स्मरण रखूँगा।"



साँप की विनती सुनकर साधु को दया आ गई और उसने साँप को अपनी तुमड़ी में छिपाकर उसे कपड़े से बाँध दिया। थोड़ी देर में साँप को ढूँढ़ते हुए कुछ आदमी आए और उन्होंने साधु से पूछा, "क्या उनकी कुटी में भागकर एक साँप आया है?" साधु ने कहा, "उनकी कुटी में कोई साँप नहीं आया।" जब साँप को मारने आए हुए लोग चले गए, साधु ने साँप को तुमड़ी से बाहर निकाला और उसे चले जाने को कहा। लेकिन, तुमड़ी के भीतर से साँप फुफकारकर साधु की ओर झपटा। साधु ने दूर हटाते हुए कहा "तुम यह क्या कर रहे हो, मैंने तुम्हारी जान बचाई है और तुम उस उपकार का बदला मुझे काटकर चुकाना चाहते हो? ऐसा तो संसार में कोई महापतित जीव भी नहीं करेगा।"

साँप ने कहा, "आपका स्वभाव है, सबका भला करना। अत: आपने मुझे बचाकर अपने साधु वेष के सम्मान की रक्षा की है। मेरा स्वभाव है काटना। यदि मैं आपको नहीं काटूँगा तो अपने धर्म से च्युत हो जाऊँगा। इसलिए मैं आपको जरूर काटूँगा।

साधु ने समझ लिया कि साँप अपनी दुष्टता पर उतारू है। साधु ने साँप से कहा, "ठीक है, तुम मुझे जरूर काटना। मैं तुम्हें धर्म-च्युत नहीं करना चाहता। लेकिन चलो, हम दोनों किसी से इस विवाद का फैसला करा लें और उसी के अनुसार आचरण करेंगे।"

साँप साधु के कथन से सहमत हुआ और वे दोनों आम के एक पेड़ के पास गए। साधु ने अपने और साँप के बीच उठे विवाद को सुनाकर आम से अनुरोध किया कि वह इस विवाद का फैसला करे। आम ने कहा, "साँप ठीक ही तो कह रहा है। यही उचित है कि वह आपको काटे। क्योंकि दुनिया में यही होता है – उपकारी के साथ लोग अपकार करते हैं। देखिए, मैं लोगों को छाया देता हूँ, लकड़ी देता हूँ और मीठा फल भी देता हूँ, लेकिन लोग मुझे ढेले और डंडे से मारते हैं और मुझे घायल करते हैं।

साँप ने साधु से कहा, "कहो बाबाजी, अब मैं आपको काटूँ न?

साधु ने अनुरोध किया कि एक अवसर साँप और दे। सामने एक गाय थी, साधु ने उससे फैसला कराने को कहा। साँप सहमत हुआ। दोनों गाय के पास गए।

साधु ने गाय से विवाद का उचित निर्णय देने को कहा। गाय ने चट्-से कहा, "साँप का कथन उचित है। उसे फौरन साधु को काट लेना चाहिए। इसमें सोचने-विचारने की कोई जरूरत नहीं है। संसार की रीति यही है कि उपकारी का अपकार करो। मैं हल जोतने के लिए बछड़े देती हूँ, खाद के लिए गोबर देती हूँ, पीने के लिए सुधा-समान दूध देती हूँ और लोगों के मरने पर अपनी पूँछ पकड़वाकर वैतरणी पार भी कराती हूँ। फिर भी, जब मैं बूढ़ी हो जाती हूँ, तो लोग मुझे काटने के लिए कसाई के हाथ बेच देते हैं।"

गाय के निर्णय से साधु अवाक् रह गया, किंतु साँप ने प्रसन्न होकर कहा, "साधु बाबा अब बोलिए, मैं अब आपको काटूँ।"

साधु ने अत्यंत विनम्रतापूर्वक कहा, "हे साँप! मुझे एक अवसर और दो। वहाँ टीले पर एक सियार बैठा हुआ है। यदि वह भी आम और गाय की तरह ही फैसला देता है तब तो तुम मुझे अवश्य काट लेना। लेकिन एक बार सियार से भी निर्णय करा ही लेने दो।" साँप किसी तरह मान गया और वे दोनों सियार के पास गए। सियार ने सारा किस्सा सुनकर साधु को डांटते हुए कहा, "तुम साधु होकर कोरा झूठ बोल रहे हो। भला, साँप कहीं तुमड़ी में बंद हो सकता है?"



साँप ने बताया, वह अपनी जान बचाने के लिए सचमुच तुमड़ी में बंद था और साधु ने उस पर कपड़ा बाँधकर उसकी रक्षा की है। सियार ने प्रतिवाद किया, "मैं मान ही नहीं सकता कि ऐसा हुआ होगा। तुम तुमड़ी में बंद होकर दिखाओ, तब मुझे विश्वास हो पाएगा।"

साधु की तुमड़ी में साँप घुस गया। सियार ने साधु से कहा, वह तुमड़ी का मुँह कपड़े से कस कर बाँध दे। साधु ने वैसा ही किया।

सियार ने साधु को डांटते हुए कहा, "अब यहाँ बैठकर टुकुर-टुकुर क्या ताक रहो हो। ले जाओ, साँप सहित तुमड़ी को गड्ढा खोद कर गाड़ दो। यह भी सुन लो कि दुष्ट पर उपकार करना तो ठीक है, किंतु उससे सज्जनता की अपेक्षा कभी मत करो। सुना नहीं है कि साँप को दूध पिलाने से भी उसके विषैले स्वभाव में परिवर्तन नहीं ला सकते। इसीलिए कहा गया है कि नरक का वास अच्छा है, किंतु दुष्ट का संग ठीक नहीं।"

प्रश्न-अभ्यास

1. साधु ने साँप को अपनी तुमड़ी में क्यों छिपाया था?
2. साँप ने साधु को काटने के लिए क्या तर्क दिया?
3. सियार ने दुष्ट का उपकार करते हुए किस बात को ध्यान में रखने के लिए कहा?

(ख) डेढ़ मित्र

किसी गाँव में अमरनाथ नाम का एक किसान रहता था। गाँव में सभी लोग उसका सम्मान करते थे और वह भी सबसे मिल-जुलकर रहता था। उसके घर में उसकी पत्नी और एक पुत्र थे। उसका पुत्र बहुत घुमंतू था। वह प्रतिदिन बहुत रात गए घर लौटता था। अमरनाथ और उसकी पत्नी को उसकी प्रतीक्षा में जागना पड़ता था। एक बार अमरनाथ ने आधी रात को घर आने पर अपने पुत्र से पूछा, "क्यों जी, तुम देर रात तक कहाँ घूमते रहते हो? कल से जल्दी घर आ जाया करो। नहीं तो ठीक नहीं होगा।"

पुत्र ने कहा, "पिताजी, आप नाहक मेरे ऊपर नाराज हो रहे हैं। मैं कहीं आवारागर्दी नहीं करता हूँ। मित्रों से मिलने-जुलने में देर हो जाती है।"

अमरनाथ ने पूछा, "तुम्हारे कितने मित्र हैं जो उनसे मिलने में आधी रात हो जाती है?"

पुत्र ने उत्तर दिया, "अब आपको मैं क्या गिनाऊँ, मेरे मित्रों की संख्या काफी बड़ी है। आज के जमाने में वही बड़ा समझा जाता है, जिसके अधिक मित्र हों। आप मेरी बात को समझने की कोशिश कीजिए।"

अमरनाथ ने प्रश्न किया, "क्या तुम्हारे मित्र विपत्ति में तुम्हारा साथ देंगे?"

पुत्र ने कहा, "पिताजी, आप यह क्या पूछ रहे हैं। मेरे मित्र मौका पड़ने पर अपने जीवन को भी दाँव पर लगा सकते हैं। हम सब एक दूसरे के सच्चे मित्र हैं।"

अमरनाथ ने कहा, "अच्छा, तब तुम अपने मित्रों को कल तीन बजे रात में गाँव के सीवाने के पीपल के पास बुलाओ। मैं देखूँगा कि तुम्हारे कितने मित्र वहाँ आते हैं। यदि तुम्हारे मित्र नहीं आएँगे, मैं रात में तुम्हारा घूमना छुड़ा दूँगा। मैं अपने इतने लंबे जीवन में जितने अधिक मित्र नहीं पा सका कि उनसे मिल-जुलकर आने में आधी रात तक का

समय लग जाता हो। मैंने अभी तक केवल् डेढ़ मित्र ही बनाए हैं और तुम हो कि तुम्हें मित्रों से फुरसत ही नहीं मिल रही।"

पुत्र ने अपने मित्रों को पीपल के पास बुलाने की बात स्वीकार कर ली। दूसरे दिन उसने अपने मित्रों को तीन बजे रात में यथा स्थान आने को कह दिया। जाड़े की रात थी। कंबल ओढ़कर अमरनाथ अपने पुत्र के साथ पीपल के नीचे बैठकर पुत्र के मित्रों के



आने की प्रतीक्षा करने लगे। तीन बजे क्या, सात बजे प्रातः तक कोई मित्र नहीं आया। पुत्र बहुत लज्जित हुआ। आठ बजे सवेरे दो–तीन–मित्र आँख मलते हुए आए और उन्होंने बताया कि नींद लग जाने से वे नहीं आ पाए थे। शेष मित्र तो एकदम आए ही नहीं।

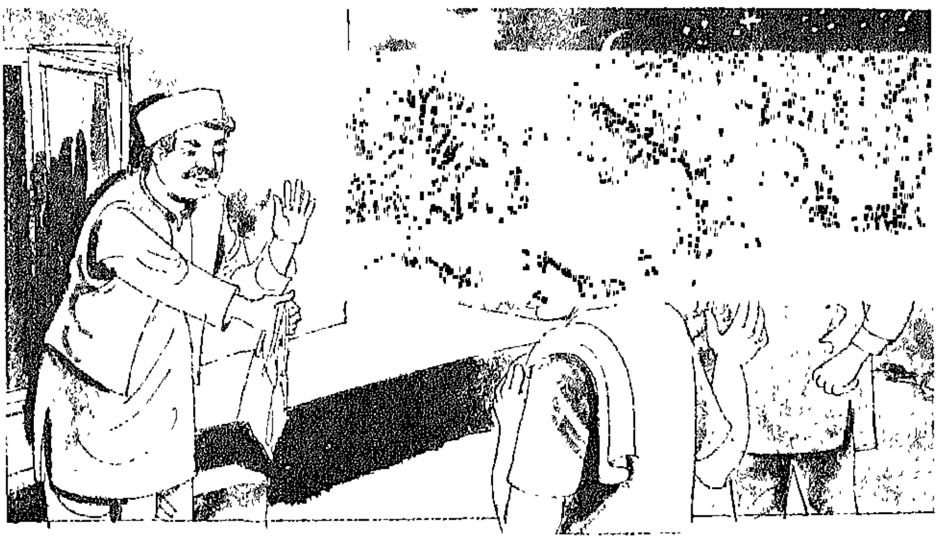
पुत्र ने सिर झुका लिया। अमरनाथ ने कहा, "बेटा, तुमने अपने मित्रों की करनी देख ली। अब चलो, मैं तुम्हें अपने डेढ़ मित्रों से मिलाता हूँ।"

अपने पुत्र को साथ लेकर आधी रात अमरनाथ एक बनिए के घर गए। उसका दरवाजा खटखटाया। बनिए ने घर के भीतर से पूछा, "कौन?",

"मैं अमरनाथ।"

"अभी आया।"

थोड़ी देर में बनिए ने हाथ में थैली लेकर दरवाजा खोला बाहर आया। उसने अमरनाथ के हाथ में पैसों की थैली रखकर कहा, अमरनाथ, "इस थैली में पांच सौ रुपए हैं। बताओ और कितने रुपए चाहिए?"



अमरनाथ ने बनिए को थैली वापस करते हुए अपने बेटे से कहा, "देखो, यह बनिया मेरा आधा मित्र है। क्योंकि यह केवल धन से ही मेरी सहायता कर सकता है। अब चलो, मैं तुम्हें अपने पूरे मित्र के यहाँ ले चलता हूँ।"

एक पहलवान के घर जाकर अमरनाथ ने पुकारा, "हे पहलवान, जल्दी आओ।" अमरनाथ की आवाज सुनते ही पहलवान लाठी लिए हुए घर से बाहर आया और बोला, "चलो, मुझे दिखाओ, कौन तुमसे भिड़ना चाहता है। मैं अभी मारकर उसका हुलिया बिगाड़ दूँगा। मेरे जीते जी तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं हो सकता है।"



अमरनाथ ने पहलवान को रोका और अपने बेटे से कहा, "देखो बेटा, यह पहलवान मेरा पूरा मित्र है। यह मेरे लिए कुछ भी करने को तैयार रहता है। बिना कुछ बताए ही यह जानता है कि मैं किसी बड़ी विपत्ति में ही इतने रात गए इसे पुकारूँगा। बेटा, खूब परखकर मित्र बनाना चाहिए। सच्चे मित्र किसी-किसी को ही मिलते हैं।"

पुत्र ने कहा, "पिताजी, मेरी आँखें खुल गई हैं और अब मैं अच्छी तरह जानकर ही मित्र बनाऊँगा।"

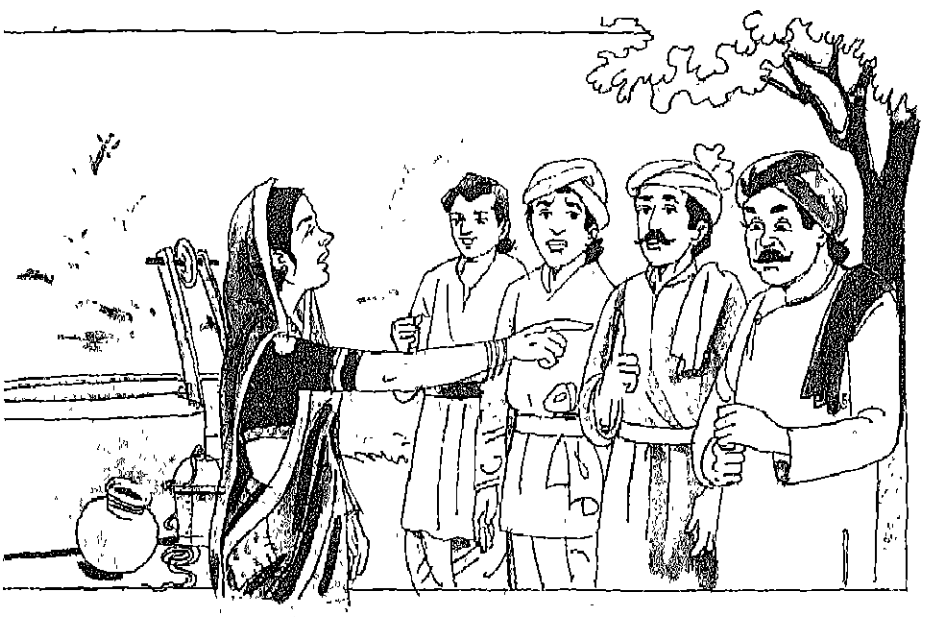
प्रश्न-अभ्यास

1. किसान अमरनाथ के पुत्र ने रात को देर से घर आने का क्या कारण बताया?
2. अपने बनिए मित्र को अमरनाथ आधा मित्र ही क्यों बताते हैं?
3. अमरनाथ ने किस प्रकार यह सिद्ध किया कि पहलवान उनका पूरा मित्र है?

(ग) चतुर मज़दूरनी

किसी गाँव में एक मज़दूर अपनी पत्नी के साथ रहता था। वे दोनों गांव के लोगों के यहाँ काम करके अपना जीवन-यापन करते थे। एक दिन मज़दूरनी ने अपने पति को भोजन परोसा। घर में पानी नहीं था। पत्नी ने पति से कहा कि वह खाना खाए और स्वयं पानी लाने कुँए पर गई। वहाँ जब वह पानी भर रही थी, तभी चार बटोही पानी पीने आए। पानी पिलाने का अनुरोध करने पर मज़दूरनी ने कहा, "तुम लोगों से मैं एक-एक प्रश्न करूँगी और जो मेरे प्रश्न का सही उत्तर देगा, उसे ही पानी पिलाऊँगी।"

मज़दूरनी ने पहले बटोही से पूछा, "वह कौन है?" तो उसने उत्तर दिया कि वह यात्री है। मज़दूरनी ने कहा, "दुनिया में दो ही यात्री हैं, तीसरा कोई नहीं। बताओ, वे दो यात्री कौन हैं?"



उस यात्री को कोई उत्तर नहीं सूझा। मज़दूरनी ने उसे पानी नहीं पिलाया। अब दूसरे बटोही से उसने पूछा, "वह कौन है?" तो उसने उत्तर दिया कि वह जब्बर है। मज़दूरनी ने कहा, "संसार में केवल दो ही जब्बर हैं, तीसरा कोई नहीं। अब बताओ, वे दोनों जब्बर कौन हैं?"

दूसरा बटोही अनुत्तर रह गया। फलत: मज़दूरनी ने उसे पानी नहीं पिलाया। इसके बाद तीसरा बटोही मज़दूरनी के सामने आया और उसने बताया कि वह लाचार है। मज़दूरनी ने कहा, "अरे भाई, दुनिया में लाचार तो केवल दो ही हैं। तुम तीसरे कहाँ से आ गए। बोलो, वे दो लाचार कौन हैं?"

तीसरा बटोही कोई उत्तर नहीं दे सका और शर्त के अनुसार मज़दूरनी ने उसे भी पानी नहीं पिलाया। अंत में चौथे राही की बारी आई। उसने मज़दूरनी से कहा कि वह मूर्ख है। मज़दूरनी ने हँसते हुए कहा, "तुम झूठ बोल रहे हो, संसार में तो केवल दो ही मूर्ख हैं। तीसरा मूर्ख तुम कैसे हो सकते हो। क्या तुम बता सकते हो कि वे दो मूर्ख कौन हैं?"

चौथा बटोही भी मुँह लटकाकर खड़ा हो गया। अन्य बटोहियों की तरह मज़दूरनी ने उसे भी पानी नहीं पिलाया। वे चारों जब मज़दूरनी से पानी पिलाने का आग्रह कर रहे थे, उसी समय वहाँ मज़दूरनी का पति आ गया। उसने देखा, उसकी पत्नी चार अपरिचितों से हँस-हँसकर बात कर रही है। उसे शंका हुई कि उसकी पत्नी का इन चारों से कोई संबंध तो नहीं? वह बिना बोले वहाँ से गाँव के मुखिया के यहाँ गया। उससे सारी घटना सुनाकर न्याय करने का अनुरोध किया। मुखिया ने अपने एक आदमी को भेजकर मज़दूरनी और चारों बटोहियों को बुलवाया। उनके आने पर उन्हें फाँसी देने की सजा सुनाई। उन्हें फाँसी देने के लिए ले जाया जाने लगा।

तभी लोगों ने मुखिया को समझाया कि उन पाँचों को फाँसी देने से पूर्व उनका पक्ष सुन लेना चाहिए। मुखिया ने पाँचों को फिर बुलवाया और पूछा, "क्या तुम लोग अपने बचाव में कुछ कहना चाहते हो?"

चारों बटोहियों ने कहा कि मुखिया स्वयं मज़दूरनी से ही पूछे, वही सच-सच बताएगी। मुखिया ने मज़दूरनी से सारा वृत्तांत सुनाने को कहा। मज़दूरनी ने कहना शुरू किया, "हे मुखिया, जब मैं कुँए पर पानी भरने गई तो ये चारों बटोही वहाँ आए और मुझसे पानी पिलाने को कहने लगे। मैंने शर्त रखी कि मैं चारों से एक-एक प्रश्न पूछूँगी, जो उत्तर देगा, उसी को पानी पिलाऊँगी। इनमें से किसी ने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया और मैंने इन्हें पानी नहीं पिलाया। इसी बीच में मेरा पति आया। उसे मेरे चरित्र पर शंका हुई और वह आपके पास न्याय माँगने चला आया।"

मुखिया ने मज़दूरनी से उसके चारों प्रश्न बताने को कहा। मज़दूरनी ने अपने प्रश्न सुना दिए। मुखिया को प्रश्नों का उत्तर नहीं सूझा। उसने मज़दूरनी को प्रश्नों का उत्तर बताने का आदेश दिया।

मज़दूरनी ने कहा, "हे मुखिया, मेरा पहला प्रश्न था कि दुनिया में दो ही यात्री हैं। वे यात्री कौन हैं? ये दोनों सूर्य और चंद्रमा हैं। ये निरंतर चलते रहते हैं, इसलिए इन्हीं दोनों को यात्री कहना चाहिए।"



मुखिया ने प्रसन्न होकर कहा, "बहुत ठीक। अब अन्य प्रश्नों को उत्तर सहित बताओ।"

मज़दूरनी बोली, "मेरा दूसरा प्रश्न था कि संसार में दो ही जब्बर हैं, उनका नाम बताओ। संसार में आग और पानी ही जब्बर हैं। इनके आगे किसी की नहीं चलती है। मेरा तीसरा प्रश्न था कि दुनिया में सबसे अधिक लाचार दो ही हैं। इसका उत्तर सीधा-सा है कि दुनिया में गाय और बेटी ही लाचार हैं।"

इतना कहकर मज़दूरनी चुप हो गई। तब मुखिया ने कहा, "हे बुद्धि विशारदा, तुमने चार में से केवल तीन प्रश्नों के उत्तर बताए। अब चौथा प्रश्न और उसका उत्तर भी बताओ।"

मज़दूरनी ने धीरे से कहा, "चौथे प्रश्न का उत्तर बताने में मुझे संकोच हो रहा है। आप स्वयं ही उसे समझने की कोशिश करें।"

मुखिया ने मज़दूरनी से कहा, "तुम निःसंकोच उत्तर दो। तुम्हें कोई कुछ नहीं कहेगा।"

मुखिया के बार-बार आग्रह करने पर मज़दूरनी बोली, "हे मुखिया, दुनिया में सबसे बड़े मूर्ख दो ही हैं। एक, जो किसी पर शंका वश आरोप लगाता है और दूसरा, जो दूसरे पक्ष की बात बिना सुने ही सजा देता है। अर्थात् मुझ पर निराधार शंका करने वाला मेरा पति और बिना जाँचे-परखे फाँसी की सजा देने वाले आप, दोनों ही मूर्ख हैं।"

मुखिया ने मज़दूरनी के उत्तर से प्रसन्न होकर उसे पुरस्कृत किया और इसके साथ ही चारों बटोहियों को भी मुक्त कर दिया।

– संकलन : विजय नारायण सिंह

प्रश्न-अभ्यास

1. मज़दूरनी ने बटोहियों को पानी पिलाने के लिए क्या-क्या शर्तें रखी?
2. मज़दूरनी ने पहले तीन प्रश्नों के क्या-क्या उत्तर बताए?
3. मज़दूरनी चौथे प्रश्न का उत्तर बताने में क्यों हिचकिचा रही थी?